दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ तंत्री–जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २३ अंक नं० ६

'मैं ज्ञाता हूँ', ऐसा ज्ञानसन्मुख होकर के परिणमन न करते हुए, रागादि का कर्ता होकर जो परिणमन करता है, वह जीव क्रमबद्धपर्याय का ज्ञाता नहीं है। क्रमबद्धपर्याय का ज्ञाता तो ज्ञायक सन्मुख रह करके रागादि को भी जानता ही है। उसके स्वभावसन्मुख–परिणमन में शुद्धपर्याय ही होती जाती है।

चारित्र

आत्मा का 'ज्ञान' स्वभाव है, इस बात को लक्ष्य में रखकर हे जीव! तू विचार कर कि जब स्वभाव से तू ज्ञायक है—तेरा सर्वज्ञस्वभाव है,—तो सामने ज्ञेयवस्तु की पर्याय क्रमबद्ध ही होगी कि अक्रमबद्ध? सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय करके अपने ज्ञानस्वभाव को सामने रखकर विचार करेगा, तो यह क्रमबद्धपर्याय की बात बिलकुल सरल तरीके से ध्यान में आ जायेगी, लेकिन यदि ज्ञानस्वभाव को भूलकर विचार करेगा, तो एक भी वस्तु का निर्णय नहीं हो सकेगा।

ज्ञान

दर्शन

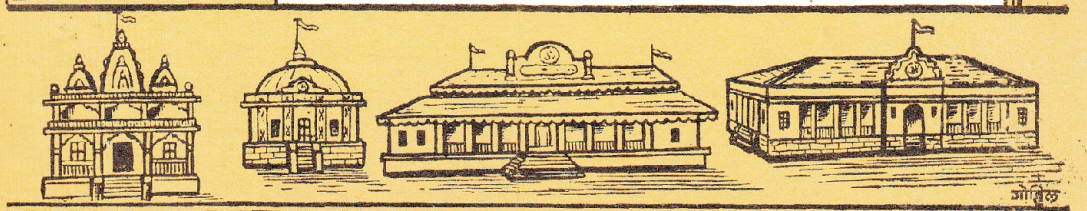

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर १९६७] वार्षिक मूल्य ३) (२७०) एक अंक २५ पैसा [आश्विन सं० २०२४

विषय-सूची

दो भाग, उनमें जो अच्छा हो यह तेरा
धर्म के आराधक सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा
सम्यक्त्व (आध्यात्मिक पद)
भगवती जिनवाणी का संदेश
दो पद
श्री भक्तामर स्तोत्र
तत्त्वचर्चा
विविध वचनामृत
इस नूतन वर्ष में...
आज के मंगल प्रभात में केवलज्ञान का आह्वान करते हैं
अहो इस ज्ञान की महिमा
वीतराग चरणों में
स्वानुभूति में आनंददायी परम तत्त्व प्रगट होता है
परम शांतिदायिनी अध्यात्म भावना
आध्यात्मिक भजन
मेरा ज्ञान
वस्तु स्तवन
धर्म के आराधक सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा
जैन प्रौढ़ शिक्षण वर्ग में प्रश्नोत्तर
जैन दर्शन शिक्षण कक्षा (मध्यम) में प्रश्नोत्तर
कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन सरस्वती भवन का उद्घाटन
कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन सरस्वती भवन का चित्र
पर्यूषण समाचार

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर शिलान्यास

हिम्मतनगर महावीरनगर में आसोज सुदी १० के दिन जिनमंदिर के पास विशाल स्वाध्याय भवन का शिलान्यास श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल महावीरनगर की ओर से होगा, शिलान्यास दहेगाँव निवासी श्री हीराभाई तथा उनके पिताजी श्री सेठ भीखाभाई के शुभहस्त से होगा, यह मांगलिक प्रसंग पर सुप्रसिद्ध विद्वान वक्ता श्री खेमचंदभाई सेठ सोनगढ़, पंडित श्री फूलचंदजी सि० शास्त्री वाराणसी, पंडित श्री लालचंदभाई राजकोट पधारेंगे।

दिगम्बर जैन धर्म शिक्षण शिविर

महावीरनगर सोसायटी में आसोज सुदी ३ से सुदी १३ तक जैनधर्म के तत्त्वज्ञान के लिये शिक्षण वर्ग रखा गया है। वह शिविर का उद्घान समारंभ के प्रमुख स्थान पर श्री नवीनतभाई सी० जवेरी विराजमान होंगे, इस अवसर पर उपरोक्त विद्वान वक्ता पधारेंगे। श्री चीमनलालभाई सोनगढ़ से तथा श्री बाबुभाई आदि फतेपुर से आकर शिक्षण शिविर में व्यवस्था रखेंगे, शिक्षण वर्ग में लाभ लेने के इच्छुक को हृदय से आमंत्रण है, आने के पूर्व पत्र द्वारा सूचना अवश्य देवें।

पता—श्री दिगम्बर जैन शिक्षण समिति
पो० हिम्मतनगर ठि० महावीरनगर (जि. साबरकांठा)

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी सुखशांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री समयसारजी शास्त्र मोक्ष अधिकार, तथा दोपहर को समयसारजी कलश टीका पर प्रवचन किया जाता है।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

अक्टूबर : १९६७ ☆ वर्ष २३वाँ, आश्विन, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : ६

दो भाग

उनमें जो अच्छा हो यह तेरा

एक और अतीन्द्रिय ज्ञानानंद का ढ़ेर ऐसा भूतार्थस्वभाव, दूसरी ओर शुभाशुभराग, द्वेष, मोह, पुण्य-पापरूप दु:खों का ढ़ेर, पर में राग में कर्तृत्व-ममत्व-भोक्तृत्वरूप दु:ख की राशि। एक स्वाश्रित निश्चयतत्त्व, एक पराश्रित व्यवहारतत्त्व। एक सुख का ढ़ेर, एक दु:ख का ढ़ेर, दोनों तेरे सामने रखे हैं, उनमें से तुझे चाहिये वह ढ़ेर ले; कौन सा भाग लूँ? सच्चा भाग है, वह स्थायी और उत्तम ही है और दु:ख का रूप है, वह विरुद्धता, अशुद्धता है, दु:ख का भाग है अर्थात् वह सुंदर तो जरा भी नहीं है, अस्थायी और दूषित ही है। इसलिये अच्छा और स्थायी भाग है, वह तेरा—ऐसा अच्छी तरह समझकर सारभूत ऐसे निज आत्मिक स्वभाव को ग्रहण करना। दु:ख को सुख मानकर अनंत बार दु:ख को ही ग्रहण किया था, अब तो सावधान होकर दु:ख को दु:ख मानकर नित्य संपूर्ण, स्थायी सुखस्वरूप को ही सुख मानकर सुख को ग्रहण कर, विकार को-शुभाशुभभाव और मिथ्या रुचि को जरा भी ग्रहण न कर। शुभाशुभ परिणाम का स्वामित्व है, राग का प्रेम, वह मिथ्यात्वरूपी परम दु:ख है। पराश्रय में प्रीतिरूप मिथ्यारुचि में अशुद्धता ढेर है और भूतार्थस्वभाव को ही ग्रहण करनेवाली सम्यक्रुचि में स्वभावचेतना का पुंज है, दोनों ढ़ेर एक साथ तेरे समक्ष विद्यमान हैं, परंतु तू परभावों के यह पुंज को छोड़कर, अंतर एकाग्र दृष्टिग्राह्य जो अंतरंग में प्रगट पूर्ण ज्ञानानंदस्वभाव पुंज को ही स्वतत्त्व समझकर ग्रहण कर, यह भाग अनंत है, महान एवं उत्तम है, ऐसा संतों का उपदेश है।

बहु लोग ज्ञान विहीन जो यह पद नहिं प्राप्त करे,
रे ग्रहण कर तूं नियत यह जो कर्म मोक्षेच्छा तुझे।

धर्म के आराधक सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा

सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग में अकेला भी शोभायमान होता है। हे जीव! सम्यक्त्व की दृढ़ता के द्वारा तू अकेला ही मोक्ष के पथ पर चला जा... जगत में अगर किसी का साथ न हो तो चिंता मत कर, सम्यक्त्व रत्न तेरा साथीदार है।

पूज्य स्वामीजी इस प्रवचन में सम्यक्त्व की दुर्लभता बतलाकर कहते हैं कि चाहे जैसी परिस्थिति में भी सम्यक्त्व की आराधना करना चाहिये। इसप्रकार सम्यक्त्व की आराधना का उत्साह जागृत करते हैं.... इस उपदेश को ग्रहण करके हम सम्यक्त्व की आराधना में कटिबद्ध हो जायें।

इस जगत में अत्यंत प्रीति सहित जो जीव पवित्र जैन दर्शन में स्थिति करता है अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शन की निश्चल होकर आराधना करता है, ऐसा जीव भले ही अकेला हो तथा कदाचित् पूर्व कर्मोदय से उसके बाह्य संयोग प्रतिकूल होने से दु:खित भी दिखाई देता हो, तथापि वह प्रशंसनीय ही है, कारण सम्यग्दर्शन द्वारा परम आनंददायक ऐसे अमृतमार्ग में वह स्थित है, और जो अमृतमय मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हैं, वे जीव मिथ्यामार्ग में स्थित हैं—ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव अधिक हों और शुभकर्म के उदय से प्रमुदित हों, तथापि उससे क्या प्रयोजन? ऐसे जीव कहीं प्रशंसा के पात्र नहीं। *(पद्मनंदि पच्चीसी : देश व्रतोद्योतन)*

भाई! जगत में तो यह कौए-कुत्ते; कीड़े-मकोड़े इत्यादि अनंत जीव हैं, परंतु जैनदर्शन प्राप्त करके जो जीव पवित्र सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की आराधना करता है, यही जीव शोभनीय है। सम्यग्दर्शनरहित पुण्य भी प्रशंसीनय अथवा इच्छा करने योग्य नहीं है। जगत में मिथ्यादृष्टि अधिक हों तथा सम्यग्दृष्टि अल्प हों तो उससे क्या? जिसप्रकार जगत में कोयले बहुत होते हैं और हीरे कम ही होते हैं, तो क्या उससे कोयला मूल्यवान हो गया? नहीं, कम होने पर भी जगमगाते हीरे ही शोभनीय होते हैं। इसीप्रकार अल्प होने पर भी सम्यग्दृष्टि जीव जगत में शोभनीय ही हैं। हीरे हर समय कम ही रहते हैं। जैनधर्म की अपेक्षा अन्य धर्मावलम्बी जीवों

की संख्या यहाँ अधिक देखने में आती है, उससे धर्मी को संदेह नहीं होता कि अन्य धर्म सच्चे हैं ? यह तो निःशंकता से अत्यंत प्रीतिसहित जैनधर्म को अर्थात् सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की आराधना करता है। और इसप्रकार के धर्मी जीवों से जगत शोभायमान है।

सर्वज्ञदेव कथित पवित्र दर्शन में जो प्रीतिपूर्वक स्थिति करता है अर्थात् निश्चलता से शुद्ध सम्यग्दर्शन की आराधना करता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव यदि जगत में अकेला ही हो तो भी वह प्रशंसनीय ही है, कदाचित् वह पूर्व दुष्कर्मोदय के कारण दुःखी हो, बाह्य प्रतिकूलता से घिरा हो, निर्धन हो, काला-कुबड़ा हो, तथापि अंतर की अनंत चैतन्यऋद्धि का स्वामी वह धर्मात्मा परम आनंदरूप अमृतमार्ग पर आरूढ़ है; करोड़ों अरबों में वह अकेला ही हो तो भी शोभनीय ही है, प्रशंसा प्राप्त करता है। रत्नकरंड श्रावकाचार में श्री समंतभद्र स्वामी कहते हैं कि-जो जीव सम्यग्दर्शन सम्पन्न है, वह चांडाल के देह में भी उत्पन्न हुआ हो तो भी गणधरदेव उसको 'देव' कहकर संबोधन करते हैं। जिसप्रकार राख से ढँके हुए अंगारे में अंदर प्रज्वलित-तेज है। उसीप्रकार चंडाल के शरीर में विद्यमान वह आत्मा सम्यग्दर्शन के दिव्य गुण से जगमगा रहा है:—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढ़ांगारान्तरौजसं॥२८॥

सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थ हो तो भी मोक्षमार्ग में स्थित है। उसे कदाचित् बाह्य प्रतिकूलता भी हो, तथापि अंतर में उसको चैतन्य के आनंद की मस्ती है; इन्द्र के वैभव में भी जो आनंद नहीं, उसका वह अनुभव करता है। पूर्व कर्म का उदय उसको चलायमान नहीं कर सकता, वह तो सम्यक्त्व में निश्चल है। किसी जीव ने तिर्यंचगति में सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया हो, उसे रहने के लिये मकान भी नहीं हो, तथापि वह आत्म गुणों से सुशोभित ही है; और मिथ्यादृष्टि जीव देवता के सिंहासन पर आरूढ़ हो तो भी वह सुशोभित नहीं होता, प्रशंसा को प्राप्त नहीं कर सकता। बाह्य संयोगों से आत्मा की शोभा नहीं हो सकती, आत्मा की शोभा तो अंतरंग के सम्यग्दर्शनादि गुणों से है। अरे, छोटा-सा मेंढ़क हो, समवसरण में बैठा हो, भगवान की वाणी सुनकर अंदर में प्रवेश करके सम्यग्दर्शन द्वारा चैतन्य के अपूर्व आनंद का अनुभव करता हो, वहाँ दूसरे किसी साधन की आवश्यकता रही ? बाह्य प्रतिकूलता कहाँ बाधक रही ? इसलिये कहते हैं कि भले ही पापकर्मों का उदय हो परंतु हे जीव ! तू सम्यक्त्व की आराधना में निश्चल

रह! पापकर्म का उदय होने से कहीं सम्यक्त्व का मूल नष्ट नहीं हो जाता, बल्कि उसके तो पापकर्म के उदय से घिरा हो, अकेला हो, फिर भी जो जीव प्रीतिपूर्वक सम्यक्त्व को धारण करता है, वह अत्यंत आदरणीय है; भले ही जगत में दूसरे उसको न मानें, भले ही विपरीत दृष्टिवाले उसका साथ न दें, फिर भी वह अकेला ही मोक्षमार्ग में आनंदपूर्वक चला जाता है। पूर्वकर्म का उदय उसको कहाँ है? उसकी वर्तमान परिणति उदय की ओर नहीं ढलती, उसकी परिणति तो चैतन्यस्वभाव की ओर ढलकर आनंदमय बन गई है, उस परिणति से वह अकेला ही शोभायमान होता है। जिसप्रकार जंगल का राजा सिंह अकेला भी शोभायमान होता है, उसीप्रकार संसार में चैतन्य का राजा सम्यग्दृष्टि अकेला ही शोभित होता है। सम्यक्त्व के साथ पुण्य हो, तभी वह जीव शोभायमान होगा – ऐसी पुण्य की अपेक्षा सम्यग्दर्शन नहीं रखता। सम्यग्दृष्टि पाप के उदय से तथा पुण्य के उदय से भी पृथक् है। दोनों से पृथक् अपने ज्ञानभाव में सम्यक्त्व से ही वह शोभनीय है। आनंदमय अमृतमार्ग में आगे प्रयाण करता हुआ वह अकेला मोक्ष में चला जाता है। श्रेणिक राजा वर्तमान में नरक में हैं, परंतु उनका आत्मा सम्यक्त्व के कारण वर्तमान में भी मोक्षमार्ग में ही गमन कर रहा है, और सम्यक्त्व के प्रताप से अल्प काल में वे तीन लोक के नाथ हो जायेंगे।

जिस जीव को सम्यग्दर्शन नहीं है, जिसको धर्म का पता नहीं है, जो अमृतमार्ग से भ्रष्ट होकर मिथ्यामार्ग में ही गमन कर रहा है—ऐसा जीव भले ही पुण्योदय के ठाठ से घिरा हुआ (पृथक् नहीं परंतु घिरा हुआ अर्थात् मोहित) हो, और लाखों-करोड़ों जीव उसे आदर की दृष्टि से देखते हों अर्थात् सन्मान करते हों, तथापि वह शोभनीय नहीं है, प्रशंसा का पात्र नहीं है। अरे, धर्म में उसकी क्या कीमत? 'पवित्र जैनदर्शन के अलावा अन्य किसी विपरीत मार्ग को अधिक संख्या में माननेवाले हैं, इसलिये जरूर उसमें कुछ अच्छाई होगी, कुछ न कुछ सत्य होगा! तो कहते हैं कि नहीं; इसमें अंश मात्र भी शोभा नहीं, सत्य नहीं। ऐसे मिथ्यामार्ग में लाखों जीव भी हों तो भी वह शोभा नहीं देते, क्योंकि आनंद से परिपूर्ण ऐसे अमृतमार्ग का उनको पता नहीं है, वे तो मिथ्यात्व के विष से भरे हुए मार्ग पर प्रयाण कर रहे हैं। जगत में कुमार्ग को लाखों लोग मानते हैं; उससे धर्मी को किंचित् भी ऐसी शंका उत्पन्न नहीं होती कि उसमें कुछ अच्छाई होगी! और सत्मार्ग में बहुत अल्प जीव हों अथवा स्वयं अकेला ही क्यों न हो तो भी धर्मी इसप्रकार शंका नहीं करता कि सत्यमार्ग यही होगा या दूसरा होगा!—वह तो

नि:शंकता से परम प्रीतिपूर्वक सर्वज्ञ भाषित पवित्र मार्ग की साधना करता है। इसप्रकार सत्मार्ग में अर्थात् मोक्षमार्ग में धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव अकेला ही शोभनीय होता है। जगत की प्रतिकूलता का घेरा उसे सम्यक्त्व से भ्रष्ट नहीं कर सकता। मोक्षमार्ग को यहाँ पर आनंद से भरा हुआ अमृतमार्ग (आनंद भर प्रद अमृतपथ) कहा गया है, इससे भ्रष्ट मिथ्यामार्ग में स्थित लाखों-करोड़ों जीव भी शोभनीय नहीं होते; और आनंदभर अमृतमार्ग में एक, दो, तीन ही सम्यग्दृष्टि क्यों न हों, तथापि जगत में सुशोभित ही होते हैं। इसलिये ऐसे सम्यक्त्व को निश्चलता से धारण कर। मुनिधर्म हो अथवा श्रावकधर्म हो, इनमें सबसे प्रथम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना मुनिधर्म या श्रावकधर्म नहीं हो सकता। इसलिये हे जीव! अगर तुझे धर्म करना हो, धर्मी बनना हो तो सर्वप्रथम ऐसे सम्यग्दर्शन की आराधना कर। सम्यग्दर्शन से ही तुझे धर्म होगा।

सत् का माप संख्या से नहीं हो सकता, सत् को दुनिया की प्रशंसा की आवश्यकता नहीं। दुनिया में अधिक जीव मानें और अधिक जीव आदर करें, तभी सत् को सत् कहा जाये-ऐसा नहीं है; अल्प माननेवाले हों तो भी सत् शोभित ही होता है; सत् अकेला अपने से ही शोभायमान है।

अहा, सर्वज्ञदेव द्वारा कहा गया आत्मा जिसकी प्रतीति में आ गया, अनुभव में आ गया, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य की मंदता के कारण कदाचित् धनहीन-पुत्रहीन, शरीर काला कुबड़ा, रोगी हो, स्त्री अथवा तिर्यंच हो, चांडाल आदि तुच्छ कुल में जन्म लिया हो, लोगों में अनादर होता हो, बाहर में असाता के उदय से दु:खी हो—इसप्रकार चाहे जितनी प्रतिकूलता में हो, तथापि सम्यग्दर्शन के प्रताप से चिदानंदस्वरूप में संतुष्ट होकर मोक्ष की साधना कर रहा है। इससे वह जगत में प्रशंसीनय है; गणधरादि संत उसके सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हैं; उसका आनंदकंद आत्मा निर्धन नहीं है, रोगी नहीं है, काला-कुबड़ा अथवा चांडाल नहीं है, स्त्री नहीं है, वह तो चिदानंदस्वरूप से ही अपने आत्मा का अनुभव करता है, अंतर में अनंत गुणों की निर्मलता का भंडार उसके पास है।

सम्यग्दृष्टि की अंतर्दशा का वर्णन करते हुए कवि श्री दौलतरामजी कहते हैं—

चिन्मूरत दृगधारीकी मोहे रीति लगत है अटापटी
बाहर नारकिकृत दुख भोगे अंतर सुखरस गटागटी;

नारकी जीव को बाह्य में कहाँ अनुकूलता है ? फिर भी वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, वह प्रशसंनीय है। ढाई द्वीप में, समवसरण आदि स्थानों में अनेक तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हैं, इसके अलावा ढाई द्वीप के बाहर तो असंख्यात तिर्यंच आत्मा के ज्ञानसहित चौथे-पाँचवें गुणस्थान पर आरूढ़ हैं। सिंह, बाघ और सर्प जैसे प्राणी भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं, वे जीव प्रशंसनीय हैं। चैतन्यस्वभाव की गहराई में उतरकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया है—उसकी महिमा का क्या कहना! जो बाह्य संयोगों से देखे, उसे उसकी महिमा का पता नहीं लग सकता, परंतु भीतर आत्मा की दशा कैसी है, इसकी पहिचान करे, तब उसकी महिमा का पता चलता है। सम्यग्दृष्टि ने आत्मा के आनंद को देख लिया है, उसका स्वाद चखा है, भेदज्ञान हुआ है, वह वास्तव में आदरणीय है, पूज्य है। बड़े राजा-महाराजाओं को प्रशंसनीय नहीं कहा गया, स्वर्ग के देवों को भी प्रशंसनीय नहीं कहा परंतु सम्यग्दृष्टि को ही प्रशंसनीय कहा है; फिर भले ही वह तिर्यंच गति में हो, नरक में हो, देव में हो, मनुष्य में हो—सभी स्थानों में प्रशंसनीय ही है। सम्यग्दर्शन धर्म की जो साधना कर रहे हैं, वही धर्म में अनुमोदनीय है। सम्यग्दर्शन बिना बाह्य त्याग-व्रत और शास्त्राध्ययन आदि अधिक हों, तो भी आचार्यदेव कहते हैं कि वह प्रशंसनीय नहीं है, क्योंकि वे साधन आत्मा के हित का कारण नहीं बनते। हित का मूल कारण तो सम्यग्दर्शन है। करोड़ों-अरबों जीवों में एक ही सम्यग्दृष्टि हो तो वह प्रशंसनीय-उत्तम है। विपरीत मार्ग में अनेक हों तो भी वे प्रशंसनीय नहीं हैं। ऐसा समझकर हे जीव! तू सम्यग्दर्शन का आराधन कर, यही तात्पर्य है।

शरीर कहाँ आत्मा का है ? जो अपना नहीं है, वह चाहे जैसा हो, उसके साथ आत्मा का क्या संबंध ? इसलिये धर्मी की महानता संयोगों से नहीं, परंतु अपने चिदानंदस्वभाव की अनुभूति से ही है। हजारों भेड़ों के बदले जंगल में अकेला सिंह हो तो भी वह शोभा देता है। उसीप्रकार जगत के लाखों जीवों में सम्यग्दृष्टि अकेला भी (गृहस्थदशा में हो तो भी) शोभा देता है। सम्यग्दर्शनरहित मुनि शोभा नहीं देता, परंतु सम्यग्दृष्टि मुनिदशा के बिना भी शोभता है। वह मोक्ष का साधक है, जिनेश्वरदेव का पुत्र है; लाख प्रतिकूलताओं के बीच वह जिनशासन में सुशोभित होता है। सम्यग्दर्शनरहित जीव कहीं भी शोभा नहीं देता। मिथ्यादृष्टि करोड़ों हों और सम्यग्दृष्टि एकाध हो, तथापि सम्यग्दृष्टि ही शोभा देता है। चींटियों के झुंड के झुंड हों, तो उससे कहीं उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि नहीं हो जाती; उसीप्रकार अनेकों मिथ्यादृष्टि

जीव इकट्ठे हो जायें तो भी वह प्रशंसा प्राप्त नहीं कर सकते। सम्यग्दर्शन के बिना पुण्य का खूब ठाठबाट हो तो उससे आत्मा की शोभा नहीं है; नरक में जहाँ हजारों-लाखों या असंख्यात वर्ष तक अनाज का एक कण तथा पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती, ऐसे स्थान पर आनंदकंद आत्मा की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन से आत्मा शोभायमान हो उठता है। प्रतिकूलता का होना कोई दोष नहीं है और अनुकूलता का होना कोई गुण नहीं है। गुण-दोषों का संबंध बाह्य संयोगों के साथ नहीं है; आत्मा के स्वभाव की एवं सर्वज्ञदेव की श्रद्धा सच्ची है या झूठी, इस पर गुण-दोषों का आधार है। धर्मी जीव अपने स्वभाव के अनुभव द्वारा-श्रद्धा द्वारा अत्यंत संतुष्ट रहता है, जगत के किसी संयोग की उसको आकांक्षा नहीं है। सम्यग्दर्शनरहित कोई जीव हजारों शिष्यों से पूजित हो-तो भी वह प्रशंसनीय नहीं है, तथा किसी सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को माननेवाला कोई भी न हो तो भी वह प्रशंसनीय है, क्योंकि वह मोक्ष का पथिक है; वह सर्वज्ञ का 'लघुनंदन' है। मुनि सर्वज्ञ के ज्येष्ठ पुत्र हैं, और समकिती लघुनंदन अर्थात् छोटा पुत्र है। भले ही छोटा (लघु) हो, परंतु है तो सर्वज्ञ का उत्तराधिकारी, वह अल्प काल में तीन लोक का नाथ होगा।

—(शेष अगले अंक में)

सम्यक्त्व

निष्कंप मेरुवत अरु निर्मल ग्रही सम्यक्त्व को,
श्रावक! ध्यावो ध्यान में उसे ही दुःख क्षय हेतु अे॥८६॥
सम्यक्त्व को जो ध्यावते वह जीव सम्यक्दृष्टि है,
दुष्यष्ट कर्मों क्षय करे सम्यक्त्व के परिणमन से॥८७॥
अधिक क्या कहना अरे! सिध्या अरु जो होहिंगे,
अरु सिद्धते-सो नरवरों, महिमा सभी सम्यक्त्व के॥८८॥
सम्यक्त्व-सिद्धिकर अहो, स्वप्नेय नहिं जो दूषित है,
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं, शूरवीर अरु पंडित हैं॥८९॥

(भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी)

भगवती जिनवाणी का संदेश

[जिनवाणी बतलाती है - वचन अगोचर वस्तु]

शास्त्र कहीं ऐसा नहीं कहते हैं कि तू हमारी ओर देखता रह! शास्त्र तो कहते हैं कि तू अपनी ओर देख! हमारा लक्ष छोड़ करके अंतर्मुख हो, और अपने आत्मा को ध्यान में ले। तुझमें अपना परिपूर्ण सामर्थ्य है, उसका आश्रय कर - ऐसा भगवती जिनवाणी का संदेश है! जिसने स्वाश्रय द्वारा आत्मा को पहिचाना, उसी ने जिनवाणी की आज्ञा को माना है; जिनवाणी ने जैसा कहा, वैसा आत्मा उसने अनुभव में लिया - यही जिनवाणी की उपासना है। गणधर-इन्द्र-चक्रवर्तियों की सभा में तीर्थंकर भगवान ने स्वाश्रित मार्ग का ढ़िंढोरा पीटकर उपदेश दिया है। जिसने स्वाश्रित मार्ग जाना, उसी ने सर्व शास्त्रों को जाना है।

[परमात्मप्रकाश प्रवचन गाथा-२३]

यह स्वानुभवगम्य परमात्म तत्त्व ऐसा नहीं है कि उसे शब्दों द्वारा जाना जा सके, चाहे दिव्यध्वनि के शब्द हों या शास्त्र के शब्द हों; इन शब्दों की ओर की रुचि रखने से आत्मा अनुभव में नहीं आता। दिव्यध्वनि और शास्त्र के शब्द भी यही कहते हैं कि हमारी ओर की दृष्टि छोड़कर अपने स्वभाव की ओर देख—तभी तुझे स्वानुभव होगा।

शास्त्र से आत्मा नहीं जाना जा सकता—ऐसा कौन कहता है ?—शास्त्र स्वयं ऐसा कहते हैं। अरे भाई, क्या पर की ओर की रुचि से आत्मा जाना जा सकता है ? नहीं; अरे ! अंतर के तेरे विकल्प से भी आत्मा नहीं जाना जा सकता, वहाँ पर की तो बात ही कहाँ रही ? शास्त्र की ओर का विकल्प तो पुण्यबंध का कारण है; उसे यदि मोक्ष का कारण मानकर सेवन करे तो मिथ्याबुद्धि होती है।

अरे भाई, तेरा तत्त्व शुद्ध चैतन्यमय, निर्विकल्प है, उसमें विकल्पों का या शब्दों का प्रवेश है ही कहाँ ? आत्मा तो स्वानुभूति में गम्य है। अंतर्मुख निर्मल ध्यान का विषय आत्मा है। अंतर्मुख उपयोग में आत्मा प्रगट होता है, इन्द्रिय या मन का विषय वह नहीं होता। इसलिये हे शिष्य ! ऐसे इन्द्रियातीत आत्मा को अनुभव में लेकर उसी को उपादेय मान। आत्मा के अनुभव

रहित शास्त्राध्ययन अथवा पंडिताई—यह मोक्ष के कारण नहीं होते। शास्त्रों की पंडिताई अलग वस्तु है और अनुभूतिगम्य परमतत्त्व अलग वस्तु है।

स्वानुभूतिगम्य अपने परमात्म तत्त्व को तू वाणी के विलास द्वारा अथवा विकल्प के विस्तार से लक्ष में लेना चाहे तो वह तत्त्व इसप्रकार लक्ष में नहीं आ सकता। परम तत्त्व ऐसा तुच्छ नहीं है कि विकल्प द्वारा जानने में आ जाये। विकल्प या वाणी के लक्ष में आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जायेगी, ऐसी मान्यतावाले ने विकल्प और वाणी से पार अपने आत्मतत्त्व की अचिंत्य-परम महिमा को नहीं जाना है।

परमात्मतत्त्व तो अंतर में है, उस परमात्मतत्त्व का प्रकाश तो स्वानुभूति द्वारा ही होता है। वाणी तो जड़ है, और विकल्प अंधकार है, उनमें परमात्मतत्त्व का प्रकाश नहीं है। इसलिये हे जीव! तू बहिरात्मपना छोड़कर अंतरात्मपन प्रगट करके परमात्मस्वयप को ध्यान में ले। परवस्तु के सामने देखने से स्ववस्तु अनुभव में नहीं आती। समाधि में अर्थात् उपयोग की अंतर्मुख एकाग्रता में तो रागरहित परम शांति का वेदन है। उदयभाव द्वारा तेरा परम स्वभाव अनुभव में नहीं आ सकता। तेरा परम-स्वभाव उदय से तो अति दूर है। सिद्ध भगवंतों का अतीन्द्रिय-स्वरूप भी राग से और परसन्मुखी क्षायोपशमिक से अर्थात् इन्द्रियज्ञान से जानने में नहीं आता, तब फिर उन्हीं जैसा अपने आत्मा का स्वरूप है, वह इन्द्रियज्ञान से ज्ञात नहीं होता। परालंबी क्षयोपशम से भी नहीं जाना जा सकता, तो फिर रागादि औदयिकभावों से तो वह किसप्रकार जाना जा सकेगा?

अरे, आत्मा का स्वरूप सिद्ध-भगवान के समान स्वयं से ही परिपूर्ण है। शुद्धात्मा के ध्यान द्वारा ही आत्मा की सिद्धि होती है; उसे जाने बिना लोग अन्य मार्ग में लगे हुए हैं, पुण्य और पराश्रय के मार्ग में लगे हैं, परंतु इससे परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परमतत्त्व अंतर में है और उसकी प्राप्ति का मार्ग भी अंतर में ही है। विकल्पों में खोजने से वह नहीं मिल सकता।

शास्त्रों के शब्दों से आत्मा नहीं जाना जा सकता, यह बात सुनकर अनेक लोग चौंक उठते हैं कि अरे! शास्त्रों का अनादर हो जायेगा!! परंतु भाई, शास्त्रों ने जो कहा, उसका सच्चा आशय समझने में ही शास्त्रों का आदर है, और उससे विपरीत मानना शास्त्रों का अनादर है। शास्त्र तो कहते हैं कि पराश्रय से लाभ होगा, ऐसा हम नहीं कहते; फिर भी जो पराश्रय से लाभ

मानता है, वह शास्त्रों का अनादर करता है। अहो, शास्त्र तो एकदम स्वाश्रय करने को ही कहते हैं—इसप्रकार जिसे स्वाश्रय की महिमा आवेगी, उसे शास्त्र के प्रति सच्चा आदर प्रगट होगा। भाई, तू तो चेतन-ज्ञानपिंड, और शास्त्र के शब्द तो अचेतन-पुद्गलपिंड; उस पुद्गलपिंड से चेतन-पिंड कैसे ज्ञात होगा? चैतन्य की जाति द्वारा ही चैतन्यतत्त्व पहिचाना जा सकता है।

आत्मा को पहिचानने का साधन क्या? तो कहते हैं कि—आत्मा का ज्ञान ही आत्मा को जानने का साधन है। शब्द आत्मा को पहिचानने का सच्चा साधन नहीं हैं। आत्मा अनुभव करने का साधन आत्मा से पृथक् नहीं हो सकता। स्वाश्रित निश्चय है, वही सच्चा मार्ग है। व्यवहार तो पराश्रित है, और पराश्रय तो बंध का कारण है। उस पराश्रय भाव में चैतन्य के आनंद का स्वाद किंचित् भी नहीं आ सकता। स्वाश्रित भाव से अंतर में परिणमित ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद सहित है, और इसी से परमात्मस्वरूप की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। छहढाला में कहा है कि:—

लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोड़ सकल जग दंद-फंद निज आतम ध्याओ।

कोई कहे कि जिनवाणी को परद्रव्य कहता है, वह जैन नहीं; परंतु यहाँ तो आचार्य-संत ऐसा कहते हैं कि जिनवाणी परद्रव्य है और परद्रव्य के आश्रय से जो निश्चय से लाभ मानता है, वह जैन नहीं है। जिनवाणी का उपदेश तो स्वाश्रय का है, स्वाश्रित मोक्षमार्ग जिनवाणी ने ही बतलाया है; इसके अतिरिक्त पराश्रय से जिसने मोक्षमार्ग माना, उसने जिनवाणी की आज्ञा नहीं मानी, इसलिये वह जैन नहीं। जिसने स्वाश्रय से आत्मा को पहिचाना, उसी ने जिनवाणी की आज्ञा मानी है, उसी ने जिनवाणी की सच्ची उपासना की है, जिनवाणी ने जैसा आत्मा बतलाया, वैसा ही उसने अनुभव में लिया, यही जिनवाणी की उपासना है।

केवल शास्त्रों के शब्द सुनता रहे, परंतु अंतर में आत्मा की ओर उपयोग को न ले जाये और आत्मा को ध्यान में न ले तो वह जीव आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता। शास्त्र कहीं ऐसा नहीं कहते कि तू हमारे समक्ष देखता रह। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि तू अपनी ओर देख; हमारा लक्ष छोड़कर अंतर्मुख हो जा और अपने आत्मा को ध्यान में ले। वस्तु वचन से अगोचर है, विकल्प से भी अगोचर है और केवल ध्यान में ही गोचर है। हे जीव! ऐसे अपने परमात्मस्वरूप को साधने के लिये दृढ़ संकल्प कर ले, क्योंकि 'हरि का मारग है शूरों का'।

तुझमें अपना परिपूर्ण सामर्थ्य है – वह शास्त्र बतलाते हैं; वह जिसे नहीं जमता, और कुछ पराश्रय नहीं चाहिये—इसप्रकार जिसे पराश्रय की रुचि है, उस कायर को सर्वज्ञ के और संतों के वचन की पहिचान नहीं है। देखो, यह वीतराग के वचन!

वचनामृत वीतराग के परम शांत रस मूल,
औषध हैं भवरोग के कायर को प्रतिकूल।

स्वाश्रय की ऐसी बात.... जिसको समझने से अंतर्मुख परिणति हो जाती है और परम शांत रस प्रगट होता है, परंतु अज्ञानी ऐसी बात सुनते ही चौंकता है कि अरे, वाणी का भी आश्रय नहीं!! वाणी से भी लाभ नहीं!! इसप्रकार कायरता से पराश्रय में लगा रहता है परंतु शूरवीर होकर स्वाश्रय नहीं करता। वीतराग की वाणी ने तो स्वाश्रय मार्ग का ढिंढोरा पीटकर उपदेश दिया है।

गणधरों के समक्ष, इन्द्रों के समक्ष, चक्रवर्ती के समक्ष इसीप्रकार लाखों-करोड़ों देव-मनुष्य-तिर्यंचों की सभा में तीर्थंकर भगवान की वाणी ने ऐसा बतलाया है कि वह आत्मतत्त्व ध्यानगम्य है, वाणीगम्य नहीं। निश्चय-व्यवहाररूप जो द्विविध मोक्षमार्ग है, उसकी प्राप्ति नियम से ध्यान द्वारा ही होती है।

श्रवण के समय श्रवण भी ऐसा करता है कि जितना स्वारय की ओर ढलूँ, उतना ही मुझे लाभ है। सुनानेवाले संत भी स्वाश्रय की बात सुनाते हैं, और सुननेवाला भी ऐसा ही स्वाश्रय का लक्ष रखकर सुनता है।—तभी जिनवाणी का सच्चा श्रवण किया कहा जाता है। पराश्रयभाव से लाभ माने अथवा मनावे-वहाँ तो जिनवाणी का श्रवण भी सच्चा नहीं है।

अहो, ऐसा स्वाश्रित मार्ग महान भाग्य से सुनने को मिलता है और जिसने ऐसा मार्ग लक्षगत किया, उसे उसके सुनानेवाले गुरुओं के प्रति, शास्त्रों के प्रति सच्ची विनय-बहुमान और भक्ति जागृत हुए बिना नहीं रहती। ध्यान द्वारा अंतर के चैतन्यतत्त्व को पहिचाने बिना वेद-शास्त्रों का अध्ययन भी व्यर्थ ही है; केवल आनंदरूप जो परमतत्त्व है, उसमें पर्याय को सम्मिलित करना-वही एकमात्र मुक्ति का उपाय है। लोक के अनेक जीव ऐसे तत्त्व को जाने बिना अन्य मार्ग में लगे हैं।—पराश्रय से विकारभाव द्वारा लाभ मान रहे हैं, परंतु मार्ग तो अंतर में चैतन्यस्वभाव के आश्रित है, इसलिये अंतर के ध्यान द्वारा शुद्धात्मा ही उपादेय है; इसके अतिरिक्त समस्त पराश्रयभाव त्यागने योग्य हैं—यह तात्पर्य है और यही जिनवाणी का संदेश है।

दो-पद

राग सोरठ

—कवि छत्रपति

आयु सब यों ही बीती जाय !
बरस अयन रितु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय ॥आयु० ॥१ ॥
बन न सकत जप तप व्रत संजम, पूजन भजन उपाय ।
मिथ्या विषय कषाय काज में, फँसौ न निकसौ जाय ॥आयु० ॥२ ॥
लाभ समै इह जात अकारथ, सत प्रति कहू सुनाय ।
होति निरंतर विधि बधवारी, इस परभाव दुखदाय ॥आयु० ॥३ ॥
धनि वे साधु लगै परमारथ, साधन में उमगाय ।
'छत्त' सफल जीवन तिनही का, हम सम शिथिल न पाय ॥आयु० ॥४ ॥

❀❀ ❀❀ ❀❀

निपुनता कहाँ गमाई राज !
मूढ भये परगुन रस राचे, खोयो सहज समाज ॥निपुनता० ॥१ ॥
पुदगल जीव मिश्र तन को, निज मानत धरि अहलाद ।
जो कन तृण भक्षत वारन, नहि जानत भिन्न स्वाद ॥निपुनता० ॥२ ॥
आनंद मूल अनाकुलताई, दुख विभाव बस चाह ।
दुह का भेद विज्ञान भये विन, मिलत न शिवपुर राह ॥निपुनता० ॥३ ॥
अब गुरु वचन सुधा पी चेतन, सरधौ सुहित विधान ।
मिथ्या विषय कषाय 'छत्त' तज, करि चिम्मूरति ध्यान ॥निपुनता० ॥४ ॥

श्री भक्तामर स्तोत्र

[प्रवचनकार - श्री कानजीस्वामी]

गुजराती लेखक - ब्रह्मचारी हरिलाल जैन हिन्दी अनुवादकर्ता - बंशीधर शास्त्री एम०ए०

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ-
स्तोतुं समुद्यत मतिर्विगतत्र पोऽहम्।
बाल विहाय जलसंस्थितमिन्दु बिम्ब
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥३॥

हे भगवान! जहाँ आपके चरण पड़े, वह भूमि पवित्र हो जाती है, ऐसे वर्णन में आपके ही गुणों की स्तुति की बात है। जब आप जहाँ शुक्लध्यान में थे, उस काल और उस क्षेत्र की भूमि भी आपके चरण कमल के स्पर्श के कारण पवित्र मानी जाती है, तब आपके गुणों की क्या बात!

प्रथम चरणकमल के प्रताप की बात कही थी, अब उसके आगे बढ़ते हैं। हे नाथ! जिस सिंहासन पर आपके चरणकमल विराजमान होते हैं, देव उसकी पूजा करते हैं। इन्द्र, शकेन्द्र, ईशानेन्द्र भी उस सिंहासन को पूज्य मानते हैं। तीर्थंकर और निर्ग्रंथ मुनिराज जहाँ-जहाँ चरण रखते हैं, धर्मात्मा वीतरागता की रुचिवश उन-उन स्थानों को पूजनीय मानता है। जहाँ-जहाँ आपके चरण पड़े, वह धूलि एवं आसन भी पूज्य है, ऐसी वीतरागता का आदर करके धर्मी जीव धर्म का माहात्म्य बढ़ाता है।

जहाँ देवाधिदेव के चरण पड़ते हैं, वहाँ तीर्थ हो जाता है। हे प्रभु! आपने पूर्ण परमानंद -स्वरूप को प्रगट किया है। अतः आपके अनंत आनंद दशा प्रगट हुई है, हे नाथ! मैं आपके गुण की स्तुति करने में अत्यंत असमर्थ हूँ, वृष का अर्थ 'पवित्र धर्म' होता है और 'उत्कृष्ट' भी होता है। जिन्होंने अपनी शक्ति से पवित्रता प्राप्त की, ऐसे सर्व भगवंत ऋषभदेव कहलाते हैं। वैसे कर्मभूमि के प्रारंभ में ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। इसप्रकार परमार्थस्वरूप को जानकर स्व के प्रति दृष्टि तो की है, किंतु जब तक पूर्ण वीतरागता प्रगट न हो, तब तक हे नाथ! धर्मी जीव को आपकी सेवा करने का राग आता है। देह की क्रिया देह के परमाणुओं के कारण

से, स्वकाल से होती है। जीव में राग और कंपन निमित्तमात्र है, राग के काल में राग आता है।

हठ और विपरीत अभिप्राय रहित तीर्थंकर परमात्मा के प्रति बहुमान लानेवाली भक्ति स्वयं उछलती है, तब अनेक विशेषण युक्त अलंकारों से स्तुति की जाती है। भगवान पूज्य हैं ही किंतु अपने निश्चय अंतरंग में भगवान है, ऐसी धारण हुई तो व्यवहार में सर्वज्ञ भगवान को माना ऐसा कहा जाता है। समयसार में एक प्रश्न किया गया है कि केवली भगवान की स्तुति किसने की? उसकी गाथा ३१-३२-३३ में कहा गया है कि जो भेदज्ञान द्वारा ज्ञेय-ज्ञायक संकर दोष दूर कर जितेन्द्रिय होंगे, उन्होंने केवली भगवान की स्तुति की है।

जो द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रियों और बाह्य विषयों से भिन्नता और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता करता है, वह भगवान की स्तति करता है। दूसरों ने भगवान की स्तुति नहीं की।

हमारी श्रद्धा में असली स्वरूप का ही आदर है, इसलिये निश्चयदृष्टि से तो मुक्त हैं ही, अत: मानतुंगाचार्य के विकल्प उठा कि मुझे कैद में डाल दिया, इससे जैनधर्म की निंदा होगी। इस विकल्प के काल में मुनि तो भक्तिरस में लीन होते हैं और कारागार के ताले टूट जाते हैं। वे मुनि कारागार से बाहर निकलते हैं। राजा भोज उनका दिव्य तेज नहीं सहन कर सका, यह सब पुण्य का प्रभाव था। राग हुआ, उसमें कर्तृत्व बुद्धि नहीं है। इस काल में ऐसा राग करनेयोग्य है, जो ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

धर्मात्मा नित्य आपको याद करते हैं एवं भक्ति-स्तुति करते हैं, बड़े-बड़े देव भी आपके चरणों की सेवा करते हैं। आपके केवलज्ञान है, मेरे नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है—

एह परमपद प्राप्तिनुं कर्युं, ध्यान मैं,
गजा वगरने हाल मनोरथरूप जो;
तो पण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो,
प्रभु आज्ञाए थाशुं तेह स्वरूप जो॥अपूर्व अवसर०॥

हे सर्वज्ञ भगवान! आपने जो परमपद देखा, उसे प्रगट करने का अपूर्व अवसर कब आवेगा? उसका अनंतवाँ भाग वाणी के संकेतों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अभी प्रस्तुत विषय सम्यग्दृष्टि मुनि का है किंतु मनोरथ केवलज्ञान का है। आपके द्वारा निर्दिष्ट मोक्षमार्ग में मेरी दृढ़ श्रद्धा है। पंचम काल में केवलज्ञान का अभाव है, इसलिये परमपद की भावना द्वारा केवलज्ञान का गानें गाते हैं। केवलज्ञान श्रुतज्ञान से अनंत गुना है, मैं तेरा गुणग्राह्य द्वारा स्तुति

करने की हिम्मत करता हूँ, उसमें लज्जा है, क्योंकि उसका अर्थ है कि अल्पज्ञता मिटाकर केवलज्ञान होगा, तब आपके समान होऊँ, किंतु वर्तमान में श्रद्धा है किंतु चारित्र में इतनी सामर्थ्य नहीं है। मुझे अपनी पर्याय की तुच्छता लघुता और द्रव्य की प्रभुता का भान है। अपनी पामरता को ध्यान में रखकर ही प्रभुता का वर्णन किया है। हे नाथ! मेरी बुद्धि बहुत अल्प है किंतु यह आपकी स्तुति में उद्यमी हुई है, मेरे पास तो तीन ज्ञान भी नहीं हैं, फिर भी मैं स्तवन करने खड़ा हुआ हूँ। पूर्ण स्वभाव को आश्रय करनेवाली बुद्धि हुई है, इसलिये पकड़ने की चेष्टा करता है। उसीप्रकार मेरा आपकी स्तुति करना भी हास्यास्पद चेष्टा है। मैं केवलज्ञान की अपेक्षा बालक हूँ, फिर भी मैं केवलज्ञानप्रकाश की स्तुति द्वारा प्रभुता एवं पवित्रता का गायन गाता हूँ। कोई मुझे अविचारी कहे तो भले ही कहो, मुझे उसमें आपत्ति नहीं है। सर्वज्ञस्वभाव मेरे सन्मुख ही है, ऐसी दृढ़ता कार्य कर रही है। मेरे में केवलज्ञान की शक्ति है, पर्याय में पूर्णता नहीं हुई, इसलिये मैं तो केवलज्ञान की स्तुति करने के लिये उद्यत हुआ हूँ।

शंका—केवलज्ञान मान लेने पर भी अल्पज्ञान क्यों दूर नहीं होता ?

समाधान—प्रकाश हो और अंधकार रहे, ऐसा नहीं होता। मैंने वस्तुतः केवलज्ञान ही को भली प्रकार नहीं माना, न अनुभवरूप किया। त्रैकालिक सर्वज्ञस्वभाव-सन्मुख होकर जिससमय जो होता है, वह होगा वह यथार्थ है, किंतु जिसे उसका निर्णय नहीं किया, उसमें केवलज्ञान की अश्रद्धारूप अज्ञानदशा कारण है। इस जगत में केवलज्ञान है, इसका निर्णय करना हो, उसे उनका स्वरूप का निश्चय होना चाहिये। केवलज्ञान का निर्णय अल्पज्ञता और राग के आश्रय से नहीं होता, नीचे राग-द्वेष तो रहता है किंतु उसको गौणकर पूर्णस्वभाव की तरफ लक्ष्य करे तो केवलज्ञान की प्रतीति हो।

केवलज्ञान का निर्णय करे तो अपने ज्ञानस्वभाव की महिमा का भान हो। स्व और पर की अवस्था क्रमबद्ध होती है, ऐसा निर्णय करने से अनंत परपदार्थों का अहंकार समाप्त हो जाता है। 'मैं ज्ञातादृष्टा हूँ' यह निर्णय करना सम्यग्दर्शन है। पर्याय में केवलज्ञान नहीं है, उस अपेक्षा से मैं बालक हूँ। पर्याय में कमजोरी है, तब भी तीन काल-तीन लोक के ज्ञाता केवलज्ञान को अपने आत्मघर में स्थापन करता हूँ।

हे जिनेन्द्र! जिसप्रकार लज्जारहित बालक जल में प्रतिबिम्बित चंद्रमा को पकड़ना चाहता है। उसीप्रकार मैं लज्जा-विवेक रहित आपकी स्तुति करने की चेष्टा करता हूँ। श्रद्धा में

केवलज्ञान का यथार्थ स्वरूप है किंतु वह पर्याय में प्रगट नहीं हुआ है। इसलिए आपकी परम कला की स्तुति का प्रयत्न जल में चंद्रमा को पकड़ने जैसा तुच्छ है।

श्री बाल रामचंद्रजी ने बाल्यकाल में चंद्रमा को देखा, तब उसे पकड़ना चाहा, हाथ में न आया, तब रोने लगे। राजा अपने मंत्री को कहते हैं कि मंत्रीजी! यह पुरुषोत्तम चरमशरीरी राम क्यों रोता है? उसका समाधान करो। मंत्री ने सावधानीपूर्वक देखा कि रामचंद्रजी चंद्रमा को सामने देख कर उछलता है एवं रोता है। इससे मंत्री समझ गया कि श्री राम चंद्रमा को नीचे उतारना चाहता है। उन्होंने राम के हाथ में दर्पण दिया, दर्पण को चंद्रमा की ओर रखकर चाँद दिखाकर उसे जेब में रख दिया, तब श्री रामचंद्रजी शांत हो गये।

उसीप्रकार ज्ञानी कहता है कि तेरा आत्मा सिद्ध परमात्मा समान है, सिद्ध भगवान तो ऊपर से नीचे नहीं आते किंतु उनकी प्रतीति करे तो श्रद्धा अपेक्षा तेरे ज्ञान में केवलज्ञान का प्रतिबिम्ब भासने लगेगा तो उनकी लगन के बल से तेरा अनंता सिद्ध परमात्मा के पास जाना हो जायेगा।

अब भगवान के गुण की स्तुति करते हैं—

श्लोक-४

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांक कान्ता-
कस्ते क्षमा सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं
को वा तरी तुमलमम्बु निधिं भुजाभ्याम्।

हे गुणों के समुद्र! आपके गुण समूह वाणी द्वारा पूर्ण रूप से नहीं कहे जा सकते। हे नाथ! आप उपशमरस से परिपूर्ण हैं, आपके गुणों का वर्णन देवताओं के गुरु वृहस्पति भी नहीं कर सकते। राग और वाणी द्वारा निर्मलानंद चैतन्य की स्तुति नहीं हो सकती। अपने ज्ञानस्वभाव का भान कर अंतरंग में स्थिर होना आपकी निश्चयस्तुति है। प्रलयकाल की सी वायु से समुद्र की लहरें आकाश में उछल रही हों और तब मोटे-मोटे मगरमच्छ मुँह फोड़कर बैठे हों, ऐसे समुद्र को कौन मनुष्य दो भुजाओं से तैरने में समर्थ है? जैसे ऐसा समुद्र भुजाओं से तरने में अशक्य है, वैसे ही हे प्रभु! तेरे गुण समूह न तो वचनगम्य हैं, न शुभाशुभराग के गम्य हैं। मिथ्या अभिप्रायरूप हठ छोड़कर अंतर्मुख निर्विकल्प विज्ञानघन स्वभाव में लीन हो, तब आपकी भक्ति, सेवा या आराधना हुई कहलाये।

आचार्य श्री समंतभद्र स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं कि हे नाथ! अभव्य जीव आपकी स्तुति नहीं कर सकते, वे आपको नमस्कार भी नहीं करते। प्रश्न—कहीं ये अभव्य नमस्कार करते हैं, ऐसा कैसे कहा? उत्तर—वे नामनिक्षेप से देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं। यदि उन्हें नहीं माने तो वे नववें ग्रैवेयक कैसे जाते हैं? समयसार शास्त्र में बंध अधिकार में कथन आया है कि अभव्य जीवों को व्यवहार का पक्ष है। जिन्हें निमित्त-व्यवहार-पुण्य का पक्ष है अर्थात् निमित्त और पुण्य के आश्रय से अंशमात्र लाभ मानने की बुद्धि है, उन्हें व्यवहार एवं पराश्रय का माहात्म्य तो आता है किंतु स्वभाव का माहात्म्य नहीं आता। इसलिये वे भी भगवान की स्तुति नहीं करते। वे मिथ्या अभिप्राय से स्तुति, सेवा, भक्ति करते हैं। अभव्य और भव्य मिथ्यादृष्टि कदाचित् ११ अंग जितने शास्त्रों का ज्ञान करे, व्यवहार में निर्दोष पंचाचार पाले, नग्न वेश भी धारण करे, फिर भी उनके अंतरंग में भेदविज्ञान नहीं है और जिनाज्ञा का बोध भी नहीं है, क्योंकि उन्हें विपरीत रुचि है। कोई कहे कि आत्मा के अवलंबन से ही सर्व पाप का नाश होता है और यहाँ निमित्त के आलंबन से पाप का नाश होना बताते हैं, तो उसका स्पष्टीकरण करो? उत्तर—यहाँ निश्चय और व्यवहार भक्ति की बात है। मिथ्यादृष्टि के यथार्थ भक्ति नहीं है, इसलिये उसके वस्तुतः पाप का नाश नहीं होता। मिथ्यादृष्टि भले ही अंध श्रद्धा से सर्वज्ञ भगवान का नाम ले किन्तु वह आस्रव और बंधतत्त्व की उपासना करते हैं। इसलिये वे संसार-भोग के हेतुरूप अभूतार्थ का आदर करते हैं। इसलिये अभव्य हो या भव्य, मिथ्या अभिप्रायवश होने से हे भगवान! आप वीतराग की महिमा द्वारा आपको नमस्कार वे नमस्कार नहीं करेगा।

जिन्हें भेदविज्ञानसहित निर्मल चैतन्यतत्त्व का बहुमान आया है, वही वीतराग भगवान को नमस्कार करते हैं और वही जीव अपनी परमार्थ महिमा में निश्चयसहित व्यवहार भक्ति का स्वरूप जानता है। जिसे चैतन्यस्वभाव का भान हुआ है तथा जो वीतरागता की रुचि में वीतराग की भक्ति करता है, वह निःसंदेहरूप से कहता है कि हे नाथ! मैं भी आपकी तरह निज स्थिरता कर केवलज्ञान प्राप्त करूँगा।

श्लोक-५

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश
कर्तुं स्तव विगत शक्तिरपि प्रवृत्तः
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

भक्तामर स्तोत्र पढ़कर कार्य प्रारम्भ करे एवं दुकान पर बैठे तो पैसा मिले, अज्ञानी जीव ऐसी आशा करता है किंतु ऐसी आशा व्यर्थ है। पुण्य के बिना धन की प्राप्ति नहीं है। धनादि की आशा से भगवान का भजन करने से पहले के पुण्य क्षीण होते हैं एवं नवीन पापकर्म बँधते हैं। श्री पद्मप्रभमलधारी मुनिराज कहते हैं कि हे मुनिजनों! देवों की ऋद्धि-वैभव देखकर क्या उसकी इच्छा होती है? शुभ विकल्प की वृत्ति अस्थिर ही है। अत: वह एवं उसके फल आदरणीय नहीं हैं। धर्मी जीव भोगादि सामग्री की इच्छा नहीं करता, फिर भी उसे यह मिल जाती है। अत: मैं ज्ञानानंदमय निज साम्राज्य की महिमा छोड़कर लाभ राज्यादि की इच्छा नहीं करूँगा।

हे मुनियों के ईश! वर्तमान में केवलज्ञान प्रगट होने की योग्यता नहीं है, फिर भी उसकी स्तुति करनी चाहिये। हे परमीश! आप परमेष्ठी पद में परिपूर्ण ईश्वर हो। मुझे (मानतुंग को) मुनिदशा है और आपको केवलज्ञान है। मेरी वर्तमान में केवलज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं है। फिर भी भक्तिवश वीतराग के प्रति उल्हास आपकी स्तुति करने के लिये प्रेरित करते हैं।

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार शास्त्र की टीका में कहते हैं कि—हमारा मन अभी आगमों का सार पढ़ने को उद्यत हुआ है, यह शुभ विकल्प नियमसार शास्त्र की टीका बनाने में निमित्त है, वहाँ उन्होंने लिखा है कि—पहले जो गणधरों ने कहा है, वही मैं कहूँगा। उसीप्रकार श्री मानतुंगाचार्य कहते हैं कि मेरी बुद्धि सामर्थ्य न होते हुए भी आपकी स्तुति करने को उद्यत हुई है।

सिंह हरिणी के बच्चे को मारने के लिये दौड़ता है, तब हरिणी अपनी शक्ति विचारे बिना सिंह को सिर मारने के लिये दौड़ती है। उसीप्रकार मेरी वर्तमान पर्याय में बहुत कमजोरी है, यह ध्यान में होते हुए भी केवलज्ञान और परमात्मा के प्रति परम प्रेममय उल्लास है। गुणी के आत्मा के प्रति ऐसा प्रेम निश्चय से होता है और व्यवहार से भगवान के प्रति प्रेम का प्रवाह होता है। हरिण अपने बच्चे को बचाने के लिये सिंह के सन्मुख जाता है।

हे भगवान! मेरी साधकदशा बच्चे के समान है किंतु उसकी सम्हाल करने के लिये प्रेम आता है। उसमें कुदेव-कुगुरु और कुशास्त्र की भक्ति न हो किंतु विकल्प आवे तो आपकी भक्ति का विकल्प मुख्यतया आता है।

भावार्थ—हे भगवान! जिसप्रकार शक्ति न होते हुए भी हरिण बच्चे को बचाने के लिये सिंह के सन्मुख दौड़ता है। उसीप्रकार साधक जीव केवलज्ञान के सन्मुख जाता है। अज्ञानी

मानता है कि भक्तामर स्तोत्र का पाठ करने से पैसा मिलता है, रोगादि दूर होते हैं, जो बड़ा दु:खदायक अज्ञान है। यहाँ तो हित-अहित अपने भावों के अनुसार ही होते हैं, ऐसी समझ -सहित ज्ञानी साधक जीव पूर्ण ज्ञान प्रगट करने में तत्पर हो रहा है। श्रीमद् राजचंद्रजी ने अपूर्व अवसर नामक काव्य में पूर्ण स्वरूप प्रगट कब करूँगा, ऐसी भावना की है, उसमें 'गजा रहित अरु हाल मनोरथ रूप जो' आदि कहा है। वह केवलज्ञान के सन्मुख होने की भावना है। अभी अल्पज्ञान है, इसलिये केवलज्ञान की भक्ति करता हूँ। मेरी शक्ति न होते हुए भी आपकी-परमात्मा की भक्ति करता हूँ। इसमें अन्य कोई हेतु नहीं है। दुनियां की प्रशंसा या इच्छा की चाह नहीं है। आत्मा के परिपूर्ण ज्ञान की प्रतीति है, उसी को अनुकरण करने का भक्तिरूप राग आता है। हे नाथ! मुझे आपकी ही प्रीति है, स्वर्ग या इन्द्रपद की इच्छा नहीं है। पूर्ण स्वभाव प्रगट नहीं हुआ है, इसलिये इस जाति का राग आता है। राग करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं है - श्री मानतुंगाचार्य पंचम काल के मुनि थे, वे पूर्ण स्वभाव को ही ध्येय बनाकर उस तरफ दौड़ लगा रहे हैं?

यदि कोई मेरी बात की हँसी करे तो उसके सामने नहीं जाना है। कोई हँसी कर सकता है कि बड़ी-बड़ी बात करता है किंतु शुक्लध्यान क्यों नहीं प्रगटाता है? संयोग और पर्याय की ओर से देखनेवाले क्या मानते हैं, ज्ञानी जानते हैं। शास्त्रों में मुनियों के द्वारा अर्हत-सिद्धदशा का वर्णन किया गया है - कोई प्रश्न कर सकता है कि—ऐसे भगवान कहाँ हैं? वे अरहंत वीतराग भगवान तो यहाँ विद्यमान नहीं हैं, तब इतनी ज्यादा भक्ति क्यों? इसप्रकार कोई कहे तो-उसका विवेचन छठवें श्लोक में दिया जायेगा। (क्रमश:)

तत्त्वचर्चा

[५]

तत्त्वरसिक जिज्ञासुओं का प्रिय विभाग—'दस प्रश्न दस उत्तर।' यह विभाग पूज्य गुरुदेव के सन्मुख हुई तत्त्वचर्चा में से तथा शास्त्रों में से तैयार किया जाता है।

(५१) **प्रश्न**—जन्म और मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त की जाती है ?

उत्तर—जन्म-मृत्यु रहित ऐसा जो आत्मा, उसमें तन्मयदशा होने पर तथा शरीर के साथ का संबंध छूटने पर आत्मा जन्म-मृत्यु रहित दशा को प्राप्त होता है। जिसे शरीर का मोह है, उसी को पुनः शरीर का संबंध (जन्म-मरण) होता है। शरीर का मोह छूटने से जन्म-मरण छूट जाते हैं और अविनाशी सिद्धपद की प्राप्ति होती है।—इसप्रकार आत्मज्ञान, वह जन्म-मरण को जीतने का प्राथमिक उपाय है।

(५२) **प्रश्न**—भरतक्षेत्र का जीव मरकर सीधा विदेह में जन्म लेता है ?

उत्तर—हाँ, मिथ्यादृष्टि हो तो जन्म लेता है, परंतु आराधक मनुष्य मरकर कर्मभूमि के मनुष्य में (विदेहादि में) जन्म नहीं लेता—ऐसा नियम है। विराधक जीव कहीं भी जन्म लेता है। कदाचित् किसी मनुष्य को पहले मिथ्यात्वदशा में मनुष्य-आयु का बंध हुआ हो और पश्चात् सम्यक्त्व (क्षायिक) प्राप्त करे तो वह आराधक जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न होता है, परंतु वह असंख्यात वर्ष की आयुवाले भोगभूमि के मनुष्य में ही जन्म धारण करता है, वह कर्मभूमि में जन्म नहीं लेता—ऐसा नियम है। विदेहक्षेत्र तो कर्मभूमि है। भोगभूमि में चौथे गुणस्थान से ऊपर के कोई गुणस्थान नहीं होते। भोगभूमि का जीव वहाँ से मरकर नियम से स्वर्ग में ही जाता है।

(५३) **प्रश्न**—केवलज्ञानी के शरीर में निगोद के जीव होते हैं ?

उत्तर—नहीं, केवलज्ञानी का शरीर परम औदारिक है, उसके आश्रित निगोद के जीव नहीं होते। आकाश में उस क्षेत्र में होते हैं, क्योंकि लोक में सर्वत्र निगोद के जीव हैं परंतु वे

जीव परमौदारिकशरीर के आश्रित नहीं हैं। केवलज्ञानी का परमौदारिकशरीर, मुनि का आहारकशरीर, देवों और नारकियों का वैक्रियिकशरीर तथा पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय एवं तेजोकाय—इन स्थानों के आश्रय में निगोद के जीव नहीं होते। (बादर निगोद ही किसी के आश्रय में रहते हैं।)

(५४) **प्रश्न**—जातिस्मरणज्ञान कब होता है ?

उत्तर—जिसे पूर्वभव के ऐसे संस्कार हों, उसे यह ज्ञान होता है, परंतु मुमुक्षु को मुख्यता तो आत्मज्ञान का ही है, जातिस्मरण की मुख्यता नहीं है। मोक्ष का कारण आत्मज्ञान है, जातिस्मरण ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। धर्मसंबंधी जातिस्मरणज्ञान हो तो वह वैराग्य तथा सम्यक्त्वादि का निमित्त होता है, परंतु मुमुक्षु को भावना और प्रयत्न आत्मज्ञान का होता है, जातिस्मरणज्ञान का नहीं। जातिस्मरण तो भव को जानता है, किसी अज्ञान को भी वह संभव है।

आत्मज्ञान से आत्मा की स्वजाति को जानना, सो परमार्थ जातिस्मरण है।

(५५) **प्रश्न**—दर्शनमोहनीय की एक प्रकृति का नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' क्यों हैं ?

उत्तर—क्योंकि उसके उदय के साथ सम्यक्त्व भी होता है, इसलिये सम्यक्त्व की सहचारिणी होने से उसका नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' पड़ा है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ उसका उदय होता है।

(५६) **प्रश्न**—जीव वर्तमान में जो पुण्य-पाप करता है, उसका फल कब मिलता है ?

उत्तर—किये हुए पुण्य-पाप का फल किसी जीव को इस भव में ही आ जाता है और किसी को अगले भवों में आता है। किसी को पुण्यभाव या पवित्रता की विशेषता के बल से पूर्व के पाप पलटकर पुण्यरूप भी हो जाते हैं; उसीप्रकार तीव्र पाप से किसी को पूर्व के पुण्य पलटकर भी हो जाते हैं। (यह बँधे हुए कर्मों की अपेक्षा बात की है।) परिणाम अपेक्षा से पुण्य-पाप के भाव का उपभोग तो उस परिणाम के समय ही जीव को होता रहता है, उसकी मंद-तीव्र आकुलता का उसी समय वह वेदन करता है। कोई जीव शुद्धता के बल से, पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को फल आने से पूर्व ही छेद डालता है।

(५७) **प्रश्न**—

'जब तुम आये जगत में, जगत हँसा तुम रोए,
अब ऐसी करनी करो, तुम हँसो जग रोए।'

—इस पद का भावार्थ क्या ?

उत्तर—यह दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त करके आत्महित का उत्तम कार्य करना चाहिये, ऐसी प्रेरणा देते हुए कवि कहता है कि हे जीव! जब तूने यहाँ जन्म धारण किया, तब जगत के लोग (स्नेही) तेरे जन्म का आनंद मानकर हँस रहे थे और तू जन्म की वेदना से रो रहा था; परंतु अब जीवन में ऐसी उत्तम करनी कर कि जिससे तू तो हँसते-हँसते आनंदपूर्वक आराधना से शरीर को त्यागकर परलोक में जाये और तेरे वियोग में तेरे गुणों का स्मरण कर-करके जगत के स्नेहीं रोएँ।

(५८) **प्रश्न**—वस्तु के द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है तो पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आती है ?

उत्तर—वस्तु 'द्रव्य' और 'पर्याय' ऐसे दो स्वभाववाली है; उससे द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है, परंतु अनित्य ऐसी पर्याय का स्वभाव शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दोनों प्रकार का है; इसलिये पर्याय की अशुद्धता द्रव्यस्वभाव में से नहीं आयी है परंतु वह तत्क्षण पर्यंत पर्याय का अशुद्ध उपादान का धर्म है। पर्याय द्रव्याश्रित परिणमित होने पर शुद्ध होती है और पराश्रित परिणमित होने से अशुद्ध होती है; परंतु वह अशुद्धता न तो पर में से आयी है और न द्रव्यस्वभाव में से आयी है।

(५९) **प्रश्न**—सम्यग्दर्शन प्राप्त करते समय जीव को जिस आनंद का अनुभव हुआ, उसका वर्णन भाषा में आ सकता है ?

उत्तर—उस अतीन्द्रिय आनंद के वेदन का वर्णन वाणी द्वारा नहीं होता; अमुक वर्णन होता है, उस पर से यदि सामनेवाला जीव वैसे लक्षवाला हो तो सच्ची स्थिति समझ जाता है।

(६०) **प्रश्न**—एक पृथक् परमाणु आँख द्वारा या दूरबीन आदि किसी अन्य साधन से देखा जा सकता है ?

उत्तर—नहीं; वह पाँच इन्द्रिय संबंधी ज्ञान का विषय नहीं है। अवधिज्ञान द्वारा परमाणु को जाना जा सकता है, परंतु अवधिज्ञान से बाहर के किसी साधन द्वारा नहीं जाना जाता। अवधिज्ञान, आँख द्वारा भी नहीं जानता, तथा परमाणु को जाने ऐसा सूक्ष्म अवधिज्ञान तो ज्ञानी को ही होता है, अज्ञानी को वैसा अवधिज्ञान नहीं होता। इसलिये जो एकत्वरूप परम आत्मा को जाने, वही एक परमाणु को जान सकता है।

इस अंक की तत्त्वचर्चा समाप्त। —जयजिनेन्द्र!

विविध वचनामृत

[आत्मधर्म का चालू विभाग : लेखांक १३, अंक ५ से आगे]

(१८१) स्वानुभव की किरणें

स्वानुभवरूपी सूर्य की किरणों द्वारा ही मोक्षमार्ग दिखायी देता है। जहाँ स्वानुभव की किरणों का प्रकाश नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग दिखायी नहीं देता। राग तो अंधकारमय बंधभाव है, उसके द्वारा मोक्षमार्ग की साधना कहाँ से होगी ? अरे, बंधभाव और मोक्षभाव के बीच भी जिसे विवेक नहीं है, उसे शुद्धात्मा का वीतराग-संवेदन कहाँ से होगा ? और स्वानुभव की किरणें फूटे बिना मोक्षमार्ग का प्रकाश कहाँ से प्रगट होगा ? अज्ञानी के स्वानुभव का कण भी नहीं है तो फिर मोक्षमार्ग कैसा ? स्वानुभव के बिना जो भी भाव करे, वो सब भाव बंधमार्ग में हैं, वे कोई भाव मोक्षमार्ग में नहीं आते, और उनसे मोक्षमार्ग की साधना नहीं होती। स्वानुभव का सूर्य उदित हो, तब मोक्षमार्ग सच्चा।

(१८२) अमृतभोजी नि:शंक ज्ञान

अमृतभोजी अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान का अनुभवन करता हुआ ज्ञान; उसने सिद्धसमान निजस्वरूप के साथ एकता करके अपने अबंधस्वभाव को नि:शंक प्रतीति में लिया, उस ज्ञान में अब कर्मबंध की शंका क्यों होगी ? शुद्धता का धाम ऐसे इस चैतन्यमूर्ति आत्मा को विकारी माना, उसी को कर्मबंध की शंका पड़ती है। धर्मात्मा अपने सहजस्वभाव में नि:शंक वर्तते हुए, उसी का स्व-रूप से अनुभवन करते हुए, जीव कर्म से सचमुच बँधा है—ऐसी शंका को किंचित् प्राप्त नहीं होते।

नियमसार में 'आप्त' को शंकाराहित कहा है; वे सर्वज्ञ परमात्मा हैं, और सर्वज्ञस्वभाव में सम्यग्दृष्टि नि:शंक हैं, उस अपेक्षा से वह (चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि) भी आप्त है।

(१८३) ज्ञान-आनंद का ज्वार

सम्यक्त्वी को आनंद का वेदन करता हुआ ज्ञान उल्लसित हुआ है, वह किसी से रोका नहीं जा सकता। इन्द्रियाँ और मन शिथिल हो जायें, तब भी ज्ञान का ज्वार रुकता नहीं है; और जहाँ ऐसा ज्ञान नहीं है, वहाँ इन्द्रिय-मन के अवलंबन से ज्ञान में ज्वार आ नहीं सकता; परलक्षी शास्त्रज्ञान द्वारा भी ज्ञान में ज्वार नहीं आता। भगवान आत्मा निजस्वभाव के आनंद का अनुभव

करता हुआ उल्लसित हुआ, वहाँ पर्याय में धर्मात्मा को जो ज्ञान-आनंद का ज्वार आया, जो अपूर्व लब्धि उल्लसित हुई, वह किसी से रुकती नहीं है... उसमें भाटा (उतार) नहीं होता।

(१८४) मूलवस्तु

बाहर का कुछ याद रहे या न रहे, परंतु धर्मात्मा को चैतन्यतत्त्व के स्वानुभव से स्वभाव के जो अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा हुए, वे भवांतर में भी नहीं भूलते; जिस ज्वार से चैतन्यसागर उल्लसित हुआ, वह अब केवलज्ञान लेकर ही रहेगा, उसमें बीच में भाटा (उतार) नहीं होगा। और जहाँ ऐसे चैतन्य की अनुभूति नहीं है, वहाँ हजारों बाहरी उपायों द्वारा या जानकारी द्वारा भी पर्याय में ज्ञान-आनंद का ज्वार नहीं आ सकता। इसप्रकार चैतन्य की अनुभूति, वह मूलवस्तु है, उसमें आनंद का ज्वार है।

(१८५) धर्मात्मा की अपूर्व लब्धि

धर्मी जीव नित्य आनंद का आस्वादन करते हैं; नित्य आनंद का ही उपभोग करते हैं। इस आनंद का वेदन ही मुख्य वस्तु है। सम्यग्दृष्टि हुआ, वहाँ ऐसा अपूर्व आनंद का वेदन हुआ, वह अपूर्व लब्धि है। ऐसे आनंद के वेदन बिना अपूर्व लब्धि नहीं कही जाती और सम्यक्त्व नहीं होता। अहा, धर्मात्मा ने अपूर्वलब्धि प्राप्त की है, जो ज्ञान-आनंद पहले कभी लब्ध नहीं हुए थे, उन ज्ञान-आनंद की अपूर्वलब्धि हुई—सिद्धों के साथ एकता हुई, सत्ता को भिन्न रखकर जाति अपेक्षा एकता हुई... सिद्धों की पंक्ति में बैठ गया। ऐसी अपूर्वलब्धि सम्यक्त्व में प्राप्त हुई है।

(१८६) आनंद के दरबार में अमृत का पान किया।

जिसने स्वानुभव से निर्विकल्प आनंदरूपी अमृत का पान किया, वह आत्मा सजीवन हुआ; पहले विकार की एकतारूप मिथ्यात्व के विष द्वारा भावमरण होता था, परंतु जहाँ भेदज्ञान करके विकार से भिन्न चैतन्यस्वभाव को अनुभव में लिया, वहाँ अतीन्द्रिय आनंदरूपी अमृत संजीवनी का अनुभव करता हुआ आत्मा सजीवन हुआ, मरणरहित अमर हुआ। अहो, ऐसा ज्ञान जिसे प्रगट हुआ, उसकी महिमा की क्या बात? वह परमात्मा का पुत्र हुआ, वह सर्वज्ञ का नंदन हुआ... आनंद के दरबार में उसने प्रवेश किया... वहाँ अब आनंद का ही वेदन है।

(१८७) अंतर का पाताल फोड़कर आनंद की धारा उल्लसित हुई

जिसप्रकार घर में जाने के लिये पहले द्वार खटखटाता है, उसीप्रकार चैतन्यस्वभाव के गृह में प्रवेश करने के लिये उसके द्वार खटखटा, अर्थात् उस स्वभाव का पक्ष कर। स्वभाव का

पक्ष करके उसमें जिसने प्रवेश किया, वह जीव आत्मा के आनंद का उपभोग करता है। सातवें नरक में भी असंख्यात जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त हैं, वे सातवें नरक में भी आनंदामृत का भोजन करते हैं; बाह्य में उन्हें चावल का दाना या पानी की बूँद नहीं मिलती, परंतु अंतर के चैतन्यभंडार को खोलकर अतीन्द्रिय आनंदरूपी अमृत का भोजन-पान करते हैं। अरे, नरक में कहीं आनंद होता है ? हाँ भाई, सम्यग्दृष्टि जीव को वहाँ भी आनंद का वेदन है; परंतु आनंद कहीं नरक में नहीं है, आनंद तो आत्मा में है। निज आत्मा में से धर्मी जीव आनंद का अनुभव करता है; वह आनंद जिसप्रकार बाह्य संयोगों में से आता नहीं है, उसीप्रकार बाह्य के प्रतिकूल संयोगों के कारण रुकता भी नहीं है। अंतर का पाताल फोड़कर जो धारा उल्लसित हुई, वह किसी से रुकती नहीं है... वह अत्यंत धीर-गंभीर है.. उसका प्रवाह टूटता नहीं है, उस प्रवाह में वृद्धि होकर केवलज्ञान होना है।

(१८८) वह कहाँ से मोक्ष प्राप्त करेगा ?

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि—

दाणु ण दिण्णउ मुनिवरहँ ण वि पुज्जिउ जिण-णाहु।
पंच ण वंदिउ परमगुरु किमु होसइ सिव-लाहु॥१६८॥

जिसने रत्नत्रय के आराधक मुनिवरों को भक्तिपूर्वक दान नहीं दिया, अनंत गुणधारी जिननाथ को जिसने नहीं पूजा और पंच परमगुरु की जिसने भक्तिपूर्वक वंदना नहीं की—उस श्रावक को मोक्ष लाभ कहाँ से होगा ?

(१८९) निश्चिंत हो ?

हे जीव! तू परद्रव्य की चिंता छोड़कर जब स्वद्रव्य के ध्यान में तत्पर होगा, तभी भवभ्रमण से छूटेगा। परमात्मस्वभाव से पराङ्मुख होकर परद्रव्य का जितना चिंता जाल है, वह संसार का कारण है। होनहार तीर्थंकर भी जब तक परद्रव्य की चिंता में आसक्त हैं और स्वद्रव्य में लीन नहीं होते, तब तक उन्हें भी शुद्धोपयोग, केवलज्ञान या मोक्ष नहीं होता। चिंतासक्त जीव को निर्विकल्प ध्यान सिद्ध नहीं होता। समस्त पर चिंता छोड़कर जो उपयोग को स्वद्रव्य में लगाता है, उसी को निर्विकल्प ध्यान, शुद्धोपयोग, केवलज्ञान और मोक्ष होता है। इसलिये हे जीव! निश्चिंत होकर तू शुद्धात्मा की भावना कर। निश्चिंत पुरुष ही आत्मा को साधते हैं।

(१९०) सम्यग्दर्शन जयवंत है

जयति सुखनिधानं मोक्षवृक्षैकबीजं, सकलमलविमुक्तं दर्शनं यद्बिना स्यात्।
मतिरपि कुमतिर्नु दुश्चरित्रं चरित्रं भवति मनुजजन्म प्राप्तमप्राप्तमेव ॥७७॥

धर्मोपदेशरूपी अमृत बरसाते हुए श्री पद्मनंदिस्वामी कहते हैं कि वह सुख निधान सम्यग्दर्शन इस जगत में जयवंत है कि जो मोक्षवृक्ष का एक बीज है, जो सकल मल से विमुक्त है, जिससे रहित मति, वह कुमति है, जिससे रहित चारित्र, वह दुश्चारित्र है, और जिसके बिना यह प्राप्त हुआ मनुष्य जन्म भी प्राप्त न होने के समान है।

वीतराग चरणों में

वीतराग, सर्वज्ञ, हितंकर, सविनय शीश नवाऊँ,
यही भावना, मेरी भगवन तुम समान बन जाऊँ,
तेरे दर्शन से, हे प्रभुवर अंतर-ज्योति जगाऊँ
तेरी वाणी से मैं अद्भुत, भेदज्ञान प्रगटाऊँ
मैं अविनाशी, देह विनाशी, ऐसी श्रद्धा लाऊँ
चाह-दाह-आकुलता मेटूँ, ज्ञान-विराग बढ़ाऊँ
मैं नहि पर का, पर नहिं मेरा, सुखराशी-पद पाऊँ
आपरूप, अपना पद पाकर अपने में रम जाऊँ
ज्ञाता-दृष्टा बनकर कर्ता-भोक्ता भाव मिटाऊँ
राग-द्वेष मोहादिक बंधन से छुटकारा पाऊँ
मैं चिद-पिंड, अखंड, अमूरति, जन्म-मरण नहिं चाहूँ
चिदानंद, ध्रुव, आतम मेरौ, अक्षय-सुख सरसाऊँ
परमातम जो शक्ति छिपी है उसको अब प्रगटाऊँ
निज-स्वभाव में थिर हो स्वामी, भव-सागर तरजाऊँ

—कुमारी जैन 'प्रतिभा'

(ऐत्मादपुर में सामूहिक रूप से बोली जानेवाली भावना)

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते॥

—समंतभद्रस्वामी

जिनके असंख्यात प्रदेशों में केवलज्ञानरूपी दीपक प्रकाशित हो गये हैं और आनंदमय सुप्रभात का जिनके उदय हुआ है, ऐसे भगवान श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव का मंगल प्रभात में परम भक्तिपूर्वक अभिनंदन करते हैं।

इस नूतन वर्ष में....

केवलज्ञान के मंगलप्रकाश से प्रकाशित यह आत्मस्वभाव हमें प्राप्त हो। जीवन का प्रवाह चैतन्य सागर की ओर बहने लगे। जीवन की सर्व प्रवृत्ति चैतन्य साधना के अनुरूप हो जाये। हे शुद्धात्मदाता पंच परमेष्ठी भगवंत! हमारे ज्ञान में सदा विराजमान रहो और हमें अनुग्रहपूर्वक चैतन्य की आराधना का उत्साह प्रदान करते रहो।

आज के मंगल प्रभात में केवलज्ञान का आह्वान करते हैं

'षट्खंडागम' के नववें भाग में कहते हैं कि विनयवान शिष्य मतिज्ञान के बल द्वारा केवलज्ञान का आह्वान करता है। हे प्रभु वर्द्धमान! ऋजुवालिका नदी के तट पर क्षपकश्रेणी द्वारा सर्वज्ञता की साधना पूर्ण करके, राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत पर उसका बोध आपने दिया, गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी-जम्बुस्वामी-धरसेनस्वामी-कुंदकुंदस्वामी जैसे समर्थ संतों ने उस ज्ञान को धारण कर भव्य जीवों के लिये संग्रहीत किया; संतों द्वारा संग्रहीत किया हुआ और कहान गुरु से प्राप्त उस पवित्र बोध द्वारा आज हम भी अपने अतीन्द्रिय-अमृत का प्रसाद प्राप्त करेंगे... यह अमृत आपकी सर्वज्ञता में दृढ़ विश्वास उत्पन्न कराता है। प्रभो! आपके प्रति परम भक्ति और विनयसहित, इस सर्वज्ञता की प्रतीति द्वारा हम भी अपने आत्मा में केवलज्ञान का आह्वान करते हैं.....।

अंश द्वारा अंशी का आह्वान करते हैं।

अहो! इस ज्ञान की महिमा!

[दिवाली पर्व के मुहूर्त में संत चैतन्य का निधान अर्पित करते हैं]

केवलज्ञानस्वभावी आत्मा की अपार महिमापूर्वक प्रवचन में स्वामीजी ने कहा—

हे जीव! सर्वज्ञ भगवान ने तुझे चैतन्य निधान अर्पित किये हैं। योगीन्दुदेव आचार्य कहते हैं कि—हम सर्वज्ञ के प्रतिनिधि बनकर तुझे बतलाते हैं। अहो! ऐसे निधान प्राप्त होने पर मुमुक्षु कैसा हर्षित हो जाता है! कि वाह! संतों ने मुझे अपने अपार निधान दिये हैं। संतों ने कृपा करके मुझे चैतन्य निधान दिये।

[परमात्मप्रकाश-प्रवचन, गाथा ३८-३९]

संतों के ध्यान में जो आनंद सहित प्रगट होता है—ऐसा केवलज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा ही परम उपादेयरूप है। उसके आनंद की, उसके केवलज्ञानस्वभाव के सामर्थ्य की क्या बात? उसके स्वभाव की महिमा के सन्मुख अन्य सभी की महिमा उड़ जाती है।

चारों ओर अनंत-अमाप ऐसा जो केवल आकाश (अलोकाकाश) जिसके मध्य में यह लोक एक रजकण के समान है; ऐसा अनंत अलोक भी ज्ञानरूपी आकाश में एक नक्षत्र (तारा) के समान प्रतिभासित होता है। ऐसा विशाल ज्ञानसामर्थ्य है; अनंत अलोक की विशालता से भी जिसके ज्ञानसामर्थ्य की विशालता अनंतगुनी है—ऐसा तेरा स्वभाव है। उसको हे जीव! तू वीतरागी दृष्टि से उपादेय कर, ऐसे ज्ञानस्वभाव को उपादेय करके जहाँ लीन हुआ, वहाँ लोकालोक तो स्वयमेव ज्ञेय होकर ज्ञान में आकर झलकते हैं।

अहो! चैतन्य के इस महासागर के समीप पुण्य-पाप और अल्पज्ञता तुच्छ मालूम होती है। एक ओर विशाल चैतन्य भगवान समस्त जगत का ज्ञाता, और दूसरी ओर समस्त जगत ज्ञेयरूप में; फिर भी ज्ञान के समीप तो ज्ञेय अनंतवें भाग के समान दिखता है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को उपादेय कर कि जिसके समीप चारों ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय) भी अनंतवें भाग अल्प हैं—वहाँ बाहर के अन्य ज्ञान की क्या बात?—ऐसे सामर्थ्ययुक्त परमात्मतत्त्व तू ही

है। अहा! ऐसे असीम ज्ञान के साथ आनंद भी असीम ही है।

ज्ञानस्वभाव में अतीन्द्रिय आनंद रस जमा हुआ पड़ा है; ज्ञान और आनंद से भरपूर आत्मा—इसके निधान संत तुझे बतलाते हैं। संत धर्मलब्धिरूप स्वकालरूपी दिवाली के मुहूर्त में चैतन्य के निधान अर्पित करके कहते हैं कि हे जीव! सर्वज्ञ परमात्मा ने तुझे ऐसे चैतन्य निधान दिये हैं, उनको हम सर्वज्ञ के प्रतिनिधि के रूप में तुझे बतलाते हैं। अहो! ऐसे निधान प्राप्त होने पर मुमुक्षु कैसा हर्षित हो जाता है!! वाह! संतों ने मेरे अपार निधान को मुझे दे दिये।

स्वानुभूति में आनंददायी परमतत्त्व प्रगट होता है

यही दिवाली के सच्चे दीपक हैं

स्वानुभूति में स्थित संतों को किसी अपूर्व आनंद का अनुभव कराता हुआ जो परमतत्त्व अंतर में प्रकाशमान हो रहा है, उसको हे जीव! तू उपादेय जानकर ध्यान कर। स्वानुभूति द्वारा जिसने परमतत्त्व अनुभव में लिया, उसके आत्मा में 'दिवाली के सच्चे दीपक' प्रगट हुए–देखो, यह 'दिवाली के मिष्टान्न' परोसने में आते हैं! अन्तर अवलोकन द्वारा आत्मा में अपूर्व ज्ञान–आनंद के दीपक जलाना ही सच्ची दिवाली है!

परमात्मप्रकाश-प्रवचन गाथा ३५, कार्तिक कृष्णा चतुर्थी

निर्विकल्प शांत अनुभूति से आत्मा वेदन में आता है; इस अनुभूति से विपरीत ऐसे जो राग–द्वेष–मोह, इनसे उत्पन्न हुए कर्म और इन कर्मों से निर्मित यह देह—इस देह से पार अतीन्द्रिय आत्मा को जहाँ अनुभूति में लिया, वहाँ पर का संबंध समाप्त ही हो गया, कर्म और राग–द्वेष भी पृथक् हो गये। जहाँ शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है, वहीं पर राग–द्वेष–कर्म और

शरीर का संबंध है। परंतु जहाँ अनुभूति द्वारा स्वयं अपने में ही स्थित रहा, वहाँ पर का संबंध भी नहीं रहा, और अशुद्धता भी नहीं रही। इसप्रकार शुद्ध परमात्मतत्त्व की भावना से संसार का नाश हो जाता है।

समभाव में स्थित मुनियों को और धर्मात्माओं को परम आनंद उत्पन्न करनेवाला जो परमतत्त्व अंतर में स्फुरायमान होता है – उसी को तू शुद्धात्मा समझ। – जितना भी व्यवहार है, वह सब शुद्धात्मा के अनुभव से बाहर ही रह जाता है। अहा, परम त्तव को जहाँ ध्यान में लिया, वहाँ वह तत्त्व परम-अपूर्व आनंदरूप है। अहा, संतों को ऐसा तत्त्व परम प्रिय है। तू उसे उपादेय मानकर ध्यान कर। जगत में आनंददायक अगर कोई हो तो केवल यह परम चैतन्य तत्त्व ही है; इसलिये यही उपादेय है। जो आनंददायक न हो, वह उपादेय किसप्रकार कहला सकता है ? जो उपादेय होता है, वह आनंददायक ही होता है। जो तत्त्व आनंद की प्राप्ति न कराये, उसे कौन आदरणीय मानेगा ?

अहो, ऐसा परम आनंददायक चैतन्यतत्त्व अनुभव में लेना ही चैतन्य का सच्चा मिष्टान्न है। दिवाली निकट आ रही है। लोग दिवाली पर नये-नये मिष्टान्न बनाकर खाते हैं। परंतु उसमें तो कुछ भी आनंद नहीं; देखो ! यह दिवाली के मिष्टान्न परोसे जा रहे हैं। ऐसा परम तत्त्व जिसने अनुभव में लिया, उसके आत्मा में 'दिवाली के सच्चे दीपक' प्रगट हुए; और वे अपूर्व आनंद सहित प्रगट होते हैं।

आत्मा जिस समय दृष्टि में आता है, तब वह परम आनंदसहित स्फुरायमान होता है। अनंत आनंद से अपना आत्मा कब अपने काम में आता है ? कि अंतर में उपयोग लगाकर जब उसको अनुभव में ले, तब अपना आनंद अपने वेदन में आता है। पर से विमुख होकर स्व की ओर उन्मुख हो—तो स्वसन्मुख योग से आत्मा आनंदसहित अनुभव में आता है। जो परमात्मतत्त्व है, वही ध्यान में प्रगट होता है। राग में-विकल्प में परमात्मतत्त्व प्रगट नहीं होता, इनसे तो परमतत्त्व विमुख है। परमतत्त्व में से तो आनंद की सरिता बहती है, आनंद की बाढ़ आती है – परंतु कब ? कि उपयोग को उसमें लगावे तब।

देखो, यह तो चैतन्य के आनंद का मिष्टान्न है। इसका कितना आदर होना चाहिये ? इसके श्रवणादि में कितना प्रेम-विनय और उत्साह होना चाहिये ? अहो, चैतन्य के आनंद का प्रवाह-इसके सन्मुख देखने का अवसर आया है, इसलिये पर के सन्मुख मत देख। क्षण-क्षण

में, पल-पल में तेरी पर्याय को आत्मा की ओर ले जा। जगत में चलते हुए विकल्प और संयोग मेरे में हैं ही नहीं।—इसप्रकार इनसे पराङ्मुख होकर, दुनिया से उदासीन होकर आत्मसन्मुख हो जा।

जिसप्रकार बीस वर्ष की कन्या का पति विवाह करके तुरंत मर जाये, तो कन्या पति प्रेम के कारण जगत में सभी से उदासीन हो जाती है, पति के विचारों के अलावा अन्य कहीं भी उसका मन नहीं लगता। सभी तरफ से उपेक्षित हो जाता है, उसीप्रकार मुमुक्षु जीव को चैतन्य के परम प्रेम के समीप अन्य समस्त जगत की उपेक्षा हो जाती है। अब मैं अपने चैतन्य तत्त्व के पास जाता हूँ, उसमें क्षण भर का विलंब भी सहन नहीं होता।

छोटा-सा राजकुमार आत्मा के भान सहित जब दीक्षा के लिये तैयार होता है, तब माता से कहता है कि हे माता! अब मुनि होकर आत्मा की पूर्णता की साधना करना चाहता हूँ, इसलिये आप मुझे आज्ञा दो! माता! सुख के लिये आपको भी यही मार्ग अंगीकार करना ही पड़ेगा। मैं आत्मा की साधना करना चाहता हूँ, उसमें एक क्षण का भी विलंब सहन नहीं हो रहा है, इसलिये हे माता! आज्ञा दो! तू मेरी अंतिम माता है, अब अन्य माता और अन्य भव मैं नहीं करूँगा। इस प्रसंग पर माता भी धर्मात्मा होने के कारण कहती है कि पुत्र! तू अपने आत्मा के हित के मार्ग पर प्रयाण कर... और हमको भी यही मार्ग मिले... हम भी इसी मार्ग की कामना करते हैं! ऐसा कहकर माता आज्ञा देती है।

अहो, स्वरूप की सन्मुखता के बिना जिसका एक समय भी व्यतीत नहीं होता, चैतन्य के आनंद में जिसकी परिणति लगी हुई है, और समस्त परभावों से पराङ्मुख है—ऐसे धर्मात्मा के अंतर में परमात्मतत्त्व-शुद्धात्मा उपादेय होकर प्रकाशित हुआ है।

प्रश्न—शुद्धात्मा किसप्रकार उपादेय होता है ?

उत्तर—शुद्धात्मा की ओर परिणति को लगाने से ही वह उपादेय होता है। विकल्प द्वारा-रागद्वारा वह उपादेय नहीं होता। जो राग को—व्यवहार को उपादेय मानता है, उसने भगवान शुद्धात्मा को उपादेय नहीं माना, बल्कि उसका तिरस्कार किया है, अपमान किया है, अवहेलना की है। समस्त परभावों की रुचि का त्याग करके आत्मा में परिणति को लगाया, उसी को आत्मा उपादेय होता है और समस्त संसार हेय हो जाता है।

भाई, मार्ग तो अंतर में है; सुख का मार्ग अंतर के परमात्मतत्त्व में है, और स्वसन्मुखता

से ही हाथ आ सकता है, बाहर में देखने से मार्ग मिल जाये, ऐसा नहीं। स्वभाव से विरुद्ध परभाव का एक कण भी जो उपादेय मानता है, उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण शुद्धात्मा हेय ही है। और जिसकी दृष्टि में संपूर्ण शुद्धात्मा उपादेय है, उसकी दृष्टि में समस्त परभाव और समस्त संसार हेय ही है।

देखो, दो पक्ष—एक ओर संपूर्ण शुद्धात्मा, दूसरी ओर संपूर्ण संसार; उसमें से एक उपादेय, दूसरा हेय; और दूसरा जहाँ उपादेय, वहाँ पहला हेय—परंतु दोनों एक साथ उपादेय नहीं हो सकते। स्वभाव और परभाव एक-दूसरे से विरुद्ध हैं—इन दोनों को एक साथ उपादेय नहीं किया जा सकता। परमात्मतत्त्व को उपादेय करने से राग का एक कण भी उपादेय नहीं रह सकता। चैतन्य के अमृत को उपादेय किया, वहाँ रागरूपी विष का स्वाद कौन लेना चाहेगा? अन्तरात्मबुद्धि प्रगट हुई, वहाँ बहिरात्मबुद्धि पृथक् हो गई। अंतरात्मबुद्धि में परमानन्द के अमृत का पान किया, वहाँ राग के वेदन की रुचि नहीं रहती। अंतर की गहराई में किंचित्मात्र भी राग की और बाह्य ज्ञातृत्व की मिठास रह जाये तो अंदर का परमात्मतत्त्व प्रगट नहीं हो सकता, इसलिये बाह्य बुद्धि का त्याग करके चैतन्यनिधान में दृष्टि लगा। अंतर-अवलोकन से तेरे आत्मा में अपूर्व ज्ञान-आनंद के मंगल-दीपक प्रगट होंगे।

सिद्धपद का स्वर्णावसर

अरे जीव! तुझे मनुष्य जीवन का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है, उसमें सिद्ध-पद की साधना कर, उसे सफल कर। यह समझकर प्रत्येक क्षण का सदुपयोग कर।

परम शांतिदायिनी अध्यात्म भावना

भगवान श्री पूज्यपाद स्वामी रचित 'समाधि शतक' पर पूज्य गुरुदेव के आध्यात्म भावना से भरपूर वैराग्य प्रेरक प्रवचनों का सार

इस 'समाधि शतक' के रचयिता श्री पूज्यपादस्वामी लगभग १४०० वर्ष पूर्व हो गये हैं; वे महान दिगम्बर संत थे; उनका दूसरा नाम 'देवनंदि' था। वे विदेहक्षेत्र में श्री सीमंधर भगवान के पास गये थे, जिसका उल्लेख शिलालेखों में है। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र की 'सर्वार्थसिद्धि' जैसी महान टीका और जैनेन्द्र व्याकरण इत्यादि महान ग्रंथ रचे हैं। उनकी अगाध बुद्धि से प्रभावित होकर योगियों ने उनको 'जिनेन्द्र बुद्धि' के नाम से संबोधित किया है—ऐसे महान आचार्य के रचे हुए समाधि शतक पर यह प्रवचन हैं। (दिल्ली में राष्ट्रपति भवन के धार्मिक विभाग में इस शास्त्र की कुछ गाथाएँ दीवार पर अंकित हैं।) —ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

(वीर सं० २४८२ श्रावण कृष्णा २, समाधिशतक गाथा ६१)

चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही प्रीति-अनुराग करने योग्य है और परद्रव्यों के प्रति उपेक्षा करने योग्य है, परंतु जिसे ऐसी प्रतीति नहीं है, वे जीव मूर्खता के कारण परद्रव्य में राग-द्वेष किया करते हैं। प्रीति करने योग्य जो चैतन्यस्वरूप है, उसे नहीं जाना; इसलिये देहादि में प्रीति रहती है, और देहादि की उपेक्षा करने के बदले उसके प्रति द्वेषबुद्धि हो जाती है। चैतन्य के आनंदरूप समाधि न होने के कारण अंतर में असमाधि के भाव वर्तते हैं। जैसे—'शरीर को सुखा डालूँ या शरीर का निग्रह करूँ' इसप्रकार की द्वेषबुद्धि उसे होती है, उसके त्याग में शांति नहीं परंतु द्वेष है। यह जड़ शरीर तो मेरे ज्ञानानंदरूप से अत्यंत भिन्न है, ऐसा जो नहीं जानता, उस अज्ञानी को शरीर के प्रति अनुग्रह और निग्रहबुद्धि उत्पन्न हुआ करती है, वह कहते हैं:—

ना जानन्ति शरीराणि, सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानिग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते॥६१॥

यह शरीर तो जड़ है, यह कहीं सुख-दुःख को नहीं जानता, और इस शरीर में सुख-दुःख होता नहीं; फिर भी मूढ़ जीव उस शरीर में हेय-उपादेयबुद्धि रखकर उसमें द्वेष और प्रीति किया करता है। मिथ्यादृष्टि जीव घर-कुटुम्ब का त्याग करके जंगल में निवास करे और

शुभभाव से स्वर्ग में जाये, तथापि चैतन्य की शांति के बिना शरीर के प्रति द्वेषबुद्धि से ही उसका त्याग है। 'शरीर द्वारा धर्म साधन करने के लिये इसे आहार दूँ, अथवा उपवासादि द्वारा शरीर का निग्रह करूँ'—ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसके अनंतानुबंधी राग-द्वेष है। चैतन्य के अमृत का वेदन उसको नहीं है, इसलिये उसे समाधि नहीं किंतु असमाधि है। शरीर को ही उसने सुख का साधन माना, वहाँ उसका पोषण करने की रागबुद्धि है, और शरीर को दुःख का साधन माना, वहाँ उसके ऊपर द्वेषबुद्धि है; इसलिये वह शरीर की चिंता करने से निरंतर असमाधि का ही वेदन करता है। परंतु मैं तो शरीर से भिन्न ज्ञान-दर्शनस्वरूप हूँ, शरीर में मेरा सुख-दुःख है ही नहीं—ऐसा ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं करता। सर्व परद्रव्यों से आत्मा को भिन्न जानकर सभी परद्रव्यों से उपेक्षित होकर ज्ञानानंदस्वरूप में प्रीति करना ही समाधि का उपाय है। धर्मी को चैतन्यस्वरूप में ही प्रीति है, अपने चैतन्यस्वरूप के अलावा शरीरादि के प्रति उपेक्षा ही है। ज्ञानस्वरूप आत्मा शांति और आनंद का सागर है-उसमें दृष्टि करने से देहादि के प्रति सहज ही उपेक्षा हो जाती है; धर्मी को आत्मभाव से उत्साह और रुचि है, इसलिये पर के प्रति उपेक्षा रहती है। अज्ञानी को आत्मभाव की तो खबर नहीं है और पर का त्याग करता है - इसलिये उसमें द्वेषबुद्धि रहती है। जहाँ आत्मा की शांति नहीं, वहाँ किसी न किसी प्रकार की जलन (संयोगों की अभिलाषा) अंतर में पड़ी हुई है। चिदानंदस्वरूप आत्मद्रव्य में परिणति की एकाग्रता बिना देहादि के प्रति सच्ची उदासीनता (उपेक्षा) नहीं हो सकती। चैतन्य के आनंद में एकाग्र होने से उस समय राग-द्वेष होते ही नहीं और वहाँ धर्मी को देहादि के प्रति इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं होती, इसलिये अनाकुल शांतिरूप समाधि ही रहती है।

चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद के समीप धर्मात्मा को जगत के समस्त बाह्य विषयों का कौतुक छूट गया है; बाह्य में कहीं स्वप्न में भी सुख का आभास नहीं होता। अमृत का संपूर्ण वृक्ष, अमृत का पूरा नारियल वृक्ष, अथवा आनंद का कल्पवृक्ष अपने में ही साक्षात् देखा है और उसका स्वाद भी लिया है, वहाँ राग की और राग के फल की मिठास क्यों आयेगी ? अज्ञानी राग में और संयोग में कहीं न कहीं अवश्य मोहित है, यदि कहीं न अटका हो तो चैतन्य के निर्विकल्प आनंद का वेदन क्यों नहीं होता ? ज्ञानी तो स्वभाव में ही संतुष्ट है। उसी को सच्चा त्याग और समाधि होती है। देखो, ऐसे आत्मतत्त्व को पहिचान कर, अंतर्मुख उसकी भावना ही परम शांति देनेवाली है, इसके अलावा अन्य कहीं भी जीव को शांति नहीं मिल सकती। अंतर

तत्त्व से अपनी महिमा पहिचाने बिना बाह्य तत्त्वों से सच्ची उदासीनता या वैराग्य नहीं हो सकता, इसलिये उसका त्याग भी सच्चा नहीं होता, और उसे आत्मा की शांति प्रकट नहीं हो सकती।

ज्ञानी-धर्मात्मा गृहस्थाश्रम में भी हो, शरीर की सेवा करता दिखायी दे, परंतु वास्तव में तो उसने देह से अपने को अत्यंत भिन्न जान लिया है, देह मैं हूँ ही नहीं, मैं तो चैतन्य हूँ; जिसप्रकार यह खम्भा आत्मा से भिन्न है, उसीप्रकार देह आत्मा से भिन्न है-ऐसी स्पष्ट भिन्नता धर्मात्मा ने जान ली है; शरीर से अपने को किंचित् भी सुख-दुःख होना नहीं मानता, और देह स्वयं अचेतन है, उसे तो सुख-दुःख की कुछ भी खबर नहीं। इसप्रकार शरीर सुख-दुःख का कारण न होने से शरीर का उपकार करने की या क्लेश देने की बुद्धि ज्ञानी को नहीं होती, ज्ञानी को तो शरीर के प्रति उपेक्षाबुद्धि है; जो मेरा है ही नहीं, उसका अनुग्रह क्या ? और निग्रह क्या ? अनुग्रह अर्थात् शरीर की सेवा, संभाल; शरीर ठीक होगा तो धर्म होगा—ऐसे भावों द्वारा उसकी देखभाल करना; और निग्रह अर्थात् शरीर का दमन करना, देह दमन करूँगा तो धर्म होगा—ऐसी बुद्धि से शरीर के कष्ट सहन करना; इसप्रकार शरीर पर अनुग्रह और निग्रह की बुद्धि कौन करता है ?—कि अज्ञानी ही ऐसी बुद्धि करता है, क्योंकि उसे शरीर में एकताबुद्धि है। ज्ञानी ने तो आत्मा को देह से सर्वथा-भिन्न पहिचानकर शरीर के प्रति उपेक्षाबुद्धि धारण कर ली है, शरीर के लाभ-हानि से आत्मा के लाभ-हानि की बुद्धि ज्ञानी को है ही नहीं। शरीर के लाभ-हानि से अपना लाभ-हानि जो मानता है, उसको शरीर के प्रति सच्चा वैराग्य होता ही नहीं; इसलिये उसके त्याग को भी द्वेष गर्भित कहा गया है। ज्ञानी को, ज्ञाता-स्वभावी स्वतत्त्व की ओर ढलने से समस्त जगत के प्रति और शरीर के प्रति सच्ची उपेक्षाबुद्धि उत्पन्न हो गई है। जहाँ तक स्व-पर तत्त्व का भेदज्ञान नहीं है, वहीं तक संसार है, और भेदज्ञान होने पर संसार से निवृत्ति होती है—ऐसा आगे की गाथा में कहा जायेगा।

मेरा ज्ञान

[परमात्मप्रकाश गाथा (५२) पर प्रवचन]

अहो! ज्ञानस्वरूप की भावना भाये तो उसमें दुःख कहाँ है ? ज्ञान की तो आनंद के साथ तन्मयता है; परंतु दुःख के साथ तन्मयता नहीं। ज्ञान में दुःख का प्रवेश ही नहीं है। ऐसा ज्ञान ही मैं हूँ। ऐसा स्वसंवेदन करने से परम आनंद स्फुरित होता है।

यह आत्मा शरीर से भिन्न ज्ञानस्वरूप है; इसलिए शरीर आत्मा का नहीं, आत्मा का तो 'ज्ञान' है, ज्ञान में आत्मा तन्मय है। 'ज्ञान' कहने से ज्ञान के साथ आनन्द आत्मा का स्वरूप है, परंतु 'ज्ञान' कहने से उसमें कहीं राग साथ नहीं आता। राग आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है, ज्ञान ही आत्मा का तन्मय स्वरूप है। राग चाहिये-व्यवहार चाहिये—ऐसी भावना ज्ञान का तिरस्कार करनेवाली दुष्ट भावना है। ज्ञान का कार्य ज्ञानस्वभावी से विरुद्ध नहीं।

जीव ज्ञाता है, ज्ञान में तन्मय रहकर ही (आत्मा) पर को जानता है, परंतु कहीं पर में तन्मय नहीं होता। पर को जानने से पर में तन्मय हो जाता हो तो पर के सुख-दुःख की वेदना भी आत्मा को हो, और नरक के दुःखों को जानते हुए केवली भगवान भी दुःखी हो जायें, परंतु ऐसा नहीं होता। केवलज्ञानी प्रभु तो अपने अतीन्द्रिय आनंद में ही तन्मय होकर विश्व को जानते हैं। ज्ञान अपने आनंद में तन्मय है परंतु पर में तन्मय नहीं है, संयोगों में तन्मय नहीं है, राग में तन्मय नहीं है।

नारकी का जीव भी वहाँ के संयोगों में तन्मय नहीं है, अर्थात् उसको वहाँ के संयोगों का कुछ भी दुःख नहीं है परंतु अपने राग-द्वेष का ही दुःख है। धर्मी जानता है कि मैं तो ज्ञान हूँ; मेरा तो ज्ञान ही है; संयोग मेरे नहीं, देह मेरा नहीं, और राग भी मेरा नहीं - इस प्रकार इन सभी से पृथक् मैं अपने ज्ञान में ही तन्मय हूँ। ज्ञान का मुझे कभी वियोग है ही नहीं। सभी संयोगों से और राग से पृथक् रहकर उनको जानने की शक्ति मुझमें है; ज्ञान के साथ आनंद की तन्मयता है, परंतु पर की तन्मयता नहीं। पर का वेदन मेरे ज्ञान में नहीं, इसलिये पर के सुख-दुःख का वेदन

मुझे नहीं होता, मैं तो ज्ञान हूँ, मेरा तो ज्ञान है।—इसप्रकार धर्मी जीव अपने को ज्ञानरूप ही अनुभव करता है।

अहो! ज्ञानस्वरूप की भावना भाये तो उसमें दु:ख कहाँ है? ज्ञान में दु:ख का प्रवेश ही नहीं। ज्ञान की सीमा में पर का या दु:ख का प्रवेश ही नहीं है।

केवलज्ञान का इतना विस्तार हुआ कि लोकालोक उसमें ज्ञेय (प्रतिभासित) हुए, फिर भी केवलज्ञान की सीमा में पर का एक कण भी नहीं आया। यह ज्ञान लोकालोक से भिन्न है, परंतु अपने आनंदादि स्वभाव से अभिन्न है। पर को तो तन्मय हुए बिना जानता है, परंतु अपने आनंद को तो तन्मय होकर ही जानता है। अपने आनंद का ज्ञान करते समय आनंद से पृथक् नहीं रहता—इसप्रकार अतीन्द्रिय आनंद के साथ ज्ञान की तन्मयता है; ऐसा ज्ञान ही मेरा 'स्व' है; ज्ञान से भिन्न अन्य कोई मेरा स्व नहीं है।

ज्ञान के निकट शरीर की क्रिया अथवा राग दृष्टिगत हो तो भी ज्ञान उसमें तन्मय हुए बिना उसका ज्ञाता है, परंतु अज्ञानी को भ्रम हो जाता है कि मेरे ज्ञान में यह रागादि प्रवेश कर गये—उसको ज्ञान की सत्ता पृथक् भासित नहीं होती। राग के साथ तन्मय होकर ज्ञान करना चाहे तो ज्ञान आनंद के साथ तमन्य नहीं रहता।

- **जीवतत्त्व तो ज्ञानमय है।**
- **रागादि तो आस्रवतत्त्व है।**
- **देह की क्रिया तो अजीवतत्त्व है।**

इसप्रकार तीनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। वहाँ भिन्नता को भूलकर तन्मयता से जानने जावे तो उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है। देह का और राग का 'ज्ञान' अपना है, परंतु देह और राग अपने नहीं। ज्ञान यदि राग को जानते हुए रागमय बन जाये, देह को जानते हुए देहमय बन जाये तो जीव, आस्रव और अजीव यह तीनों तत्त्व पृथक् नहीं रह सकते। जीव की अपनी जानने की शक्ति कितनी है, यह भी अज्ञानी का मालूम नहीं।

ज्ञान की तन्मयता में आनंद है, प्रभुता है, स्व-पर प्रकाशकता है, परंतु उस ज्ञान में पर नहीं है, विकार नहीं है। ज्ञान और परज्ञेय में भिन्नता है, और आनंद इत्यादि स्वज्ञेय के साथ ज्ञान की अभिन्नता है। आनंद के साथ उपयोग की तन्मयता के बिना अतीन्द्रिय आनंद का वेदन नहीं हो सकता।

अरे जीव! यह तेरे घर की, तेरे स्वभाव की बात संत तुझे बतला रहे हैं। ज्ञान तेरा है, उसको तू जान, वह ज्ञान उपादेयरूप सुख से भरपूर है। सुख के साथ तन्मय ऐसे अपने ज्ञान को ही तू उपादेय जान। 'मेरा ज्ञान है' इसप्रकार आत्मा को ज्ञानरूप से अनुभव में ले।

पर को जानते हुए ज्ञान निज स्वभाव को छोड़कर पर में नहीं जाता, और पर का एक अंश भी अपने में नहीं लाता। अपने अस्तित्व में रहकर वह स्व-परप्रकाशक भाव से परिणमन करता है। ज्ञान की सत्ता में आनंद है, परंतु ज्ञान की सत्ता में जड़ नहीं, और विकार भी नहीं। पूर्ण अखंड आनंद के साथ जिसकी किंचित्मात्र भी पृथक्ता नहीं, ऐसा निजज्ञान ही अनुभव करनेयोग्य है – ऐसा जानना। ऐसे ज्ञान को स्वयं अपने में लाये तो केवली प्रभु के पूर्ण ज्ञान की और पूर्ण आनंद की प्रतीति हो, यह इन्द्रियातीत ज्ञान परम आनंदरस में निमग्न है। ऐसा ज्ञान निजस्वभाव की परम महिमा से भरा हुआ है, – ऐसा मेरा ज्ञान है, वही मैं हूँ। इसप्रकार ज्ञाता होकर ज्ञाता को जानने से परम आनंद होता है। इसप्रकार के आनंदमय ज्ञान का अनुभव करो, ऐसा संतों का उपदेश और आशीर्वाद है।

आध्यात्मिक भजन

आत्म गगन में ज्ञान ही गंगा, जिसमें अमृतवासा।
सम्यग्दृष्टि भर भर पीवे, मिथ्यादृष्टि प्यासा॥१॥
आतम नगरी में चेतन राज्य है, ज्ञायक कारक थावेजी।
नृप अभावे तो विप्लव वर्ते है, अराजकता मद छावे जी॥२॥
इण परकारे तो चिद् अवलोकिये।
चेतन नगरी में ज्ञायकराज्य है, सम्यक् न्याय दिपावेजी॥
नृप सद्भावे तो शांति वर्ते है, परमातम पद पावेजी॥
इण परकारे तो चिद् अवलोकिये।

[आत्मार्थी]

वस्तु स्तवन

प्रश्न—सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र अपेक्षा तीन प्रकार निर्विकल्पता क्या है ?

उत्तर—(१) विपरीत अभिप्राय रहित-यथार्थता सहित भूतार्थ-पूर्ण विज्ञानघन स्वयप का ग्रहण-आदर आश्रय जो नित्य की अनुभूति सहित प्रवर्ते, उसमें विरुद्धता का किंचित् आदर नहीं है किंतु नकार, निषेध वर्तता है, ऐसी निर्मल श्रद्धा वह चतुर्थ गुणस्थान से सम्यग्दर्शन अपेक्षा निरन्तर निर्विकल्पता है।

(नव तत्त्वों का दोनों नय द्वारा जानना, उसमें विपरीत अभिप्राय रहित आ जाता है।)

(२) ज्ञान-जब ऐसा स्पष्ट भावभासन सहित उसका ज्ञान स्वसन्मुख हुआ, उतने काल बुद्धिगोचर विकल्प रहित होने से ज्ञान अपेक्षा निर्विकल्पता।

(३) नित्य एकरूप सामान्य द्रव्यस्वभाव के सन्मुख एकत्व निश्चयरूप जितने अंश से अराग परिणति वर्तती है, उतने अंश में निरंतर ज्ञानधारा है, उसका नाम चारित्र अपेक्षा निर्विकल्पता।

श्रद्धारूप निर्मल परिणति में प्रत्यक्ष-परोक्ष, गौण-मुख्य का क्रम नहीं है, सम्यक्त्व तो निरंतर परिणमनरूप ही होता है, प्रत्यक्ष-परोक्ष तो ज्ञान में है।

१. सम्यग्दृष्टि को शुद्धनय अनुसार (=शुद्धनय के विषय के आश्रय से) बोध हुआ है, इसलिये नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप से परिणमित होता है। अज्ञानचेतना-कर्म-कर्मफलचेतना के स्वामित्वरूप जरा भी वर्तता नहीं है।

२. स्वरूप-सन्मुख नि:शंक अखंड रुचि धारावाही काम करती है, स्वप्न में भी विषमता-असत्य का आदर नहीं होता।

सर्वज्ञ के ज्ञान अनुसार स्पष्ट प्रतीति-प्रसिद्धि और भावभासन सहित हेय-उपादेय में नि:संदेह अनुभव=पका ज्ञान नित्य के लक्ष्य से वर्तते हैं। ऐसी मर्यादा प्रथम (प्रारम्भ में) निर्णय में ग्रहण करना, वह भी तत्त्वविचार की भली भूमिका है। भली भूमिका वास्तव में कब कही जायेगी ? कि भाव निक्षेप से स्वसन्मुख हो तब।

धर्म के आराधक सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा

सम्यक्त्व की अत्यंत महानता बतलाकर चाहे जैसी परिस्थिति में भी दृढ़ आराधना का उपदेश देते हुए इस प्रवचन में स्वामीजी कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव लाखों-करोड़ों जीवों में अकेला हो, तब भी शोभायमान होता है और अकेला ही निःशंक होकर वह मोक्षमार्ग में चला जाता है। संसार में किसी का साथ न हो तो भी सर्वज्ञ भगवान इसके साथीदार हैं। इसलिये हे जीव! तू दृढ़ता से ऐसे सम्यक्त्व की आराधना कर।

रोगादि अथवा चाहे जैसी प्रतिकूलता में भी 'मैं स्वयंसिद्ध, चिदानंदस्वभावी परमात्मा हूँ' ऐसी निजात्मा की अंतर-प्रतीति धर्मी जीव को किंचित्मात्र भी नहीं हटती। आत्मा के स्वभाव की ऐसी प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है, और उसके नित्तिरूप सर्वज्ञदेव की वाणी होती है; इसमें जिसको शंका हो, वह जीव धर्मी नहीं हो सकता। सम्यग्दृष्टि जिनवचन में और जिनवचनानुसार दरशाये हुए आत्मस्वभाव में प्रतीति करके सम्यग्दर्शन में निश्चिंत होकर अडिग रहते हैं। ऐसे जीव जगत में तीनों काल विरले ही होते हैं। अल्प संख्या में हों, तथापि वे प्रशंसनीय हैं। जगत के सामान्य जीव भले ही उन्हें न पहिचानें, परंतु सर्वज्ञ भगवान, संत और ज्ञानी की दृष्टि में वे प्रशंसा के पात्र हैं, भगवान और संतों ने उनको मोक्षमार्ग में स्वीकार किया है। जगत में इससे बड़ी दूसरी कौन सी प्रशंसा है? बाहर में चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों तथापि सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने पवित्र दर्शन से च्युत नहीं होते।

प्रश्न—चारों ओर प्रतिकूलता से घिरे हुए जीव को सम्यग्दर्शन की अनुकूलता कब प्राप्त होगी?

उत्तर—भाई, सम्यग्दर्शन में कहाँ किसी संयोग की आवश्यकता है? प्रतिकूल संयोग कहीं दुःख के कारण नहीं, और अनुकूल संयोग कहीं सम्यक्त्व का कारण नहीं। आत्मस्वरूप में भ्रम होना दुःख का कारण है और आत्मस्वरूप की निर्भ्रांत प्रतीति सम्यग्दर्शन है, वह सुख का कारण है। वह सम्यग्दर्शन किन्हीं संयोगों के आश्रित नहीं परंतु अपने सहज स्वभाव के ही

आश्रित है। अरे, नरक में तो कितनी असह्य प्रतिकूलता है! वहाँ पर खाने के लिये अन्न और पीने के लिये पानी भी नहीं मिलता, शीत और उष्णता का पार नहीं, शरीर में वेदना का पार नहीं, फिर भी वहाँ (सातवें नरक में) असंख्य जीवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है; वह किसके आधार से प्राप्त किया? संयोगों से लक्ष हटाकर स्वपरिणति को अंतर में ले जाकर अपने आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है। नरक में भी ऐसा सम्यग्दर्शन हो सकता है तो फिर यहाँ क्यों नहीं हो सकता? यहाँ पर नरक जितनी प्रतिकूलता तो नहीं है? स्वयं अपनी रुचि बदलकर आत्मा की ओर दृष्टि करे तो संयोग बाधक नहीं होते। स्वयं रुचि नहीं बदले-करे और केवल संयोगों का बहाना बनाये तो वह मिथ्यादृष्टि है।

पैसा हो या पुण्य हो, तभी जीव प्रशंसनीय है - ऐसा नहीं कहा, परंतु जिसके पास धर्म है, उसी जीव को प्रशंसनीय कहा है। पैसा अथवा पुण्य, वह आत्मा के स्वभाव की वस्तु है? जो अपने स्वभाव की वस्तु न हो, उससे आत्मा की शोभा किसप्रकार हो सकती है? हे जीव! तेरी शोभा तो तेरे निर्मल भावों से ही है, अन्य से तेरी शोभा नहीं, अंतरस्वभाव की प्रतीति करके उसमें तू स्थिर हो। बस, तेरी मुक्ति में इतनी देर है।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों से धर्म-अधर्म का माप नहीं किया जा सकता; धर्मी हो उसको प्रतिकूलता आती ही नहीं - ऐसा नहीं; हाँ इतना अवश्य है कि धर्मी जीव प्रतिकूलता में अपने धर्म को नहीं छोड़ता। कोई कहे कि धर्मी जीव के पुत्र इत्यादि मरते ही नहीं, धर्मी के रोग होता ही नहीं, धर्मी की नाव डूबती नहीं; तो उसकी बात सत्य नहीं, उसको धर्म के स्वरूप की खबर नहीं। धर्मी को पूर्व के पापों का उदय हो तो उपरोक्त सभी बातें होती हैं। किसी समय धर्मी के पुत्रादि की आयु अल्प भी होती है और अज्ञानी के पुत्रादि की आयु दीर्घ होती है, परंतु इससे क्या? यह तो पूर्व में बाँधे गये शुभ-अशुभ कर्मों के आधीन है, इसके साथ धर्म-अधर्म का संबंध नहीं है। धर्मी की शोभा तो अपने आत्मा से ही है, किसी भी प्रकार के संयोग से इसकी शोभा नहीं। मिथ्यादृष्टि को संयोग किसी समय अनुकूल भी होते हैं, परंतु अरे! मिथ्यामार्ग का सेवन, यह महा दु:ख का कारण है - इसकी प्रशंसा कैसी? कुदृष्टि-कुमार्ग की प्रशंसा धर्मी जीव नहीं करता। जो जीव सम्यक् प्रतीति द्वारा निजस्वभाव से भरा हुआ है, परंतु पाप के उदय के कारण संयोग अनुकूल नहीं है तो भी उसका जीवन प्रशंसनीय है-सुखी है। मैं अपने सुखस्वभाव से परिपूर्ण हूँ और संयोगों से खाली हूँ-ऐसी अनुभूति धर्मी जीव को सदा

रहती है, वह सत्य का सत्कार करनेवाला है, आनंददायक अमृत के मार्ग पर चलनेवाला है, और जो स्वभाव से ही खाली है अर्थात् ज्ञानानंद से भरे हुए अपने स्वभाव को दृष्टि में नहीं लेता और विपरीत दृष्टि से राग को ही धर्म मानता है, संयोग से और पुण्य से अपने को भरा हुआ मानता है, तो वह जीव बाह्य संयोगों से सुखी जैसा दिखायी देते हुए भी महा दुःखी है, और संसार के मार्ग पर है। बाह्य संयोग कहीं वर्तमान धर्म का फल नहीं हैं। धर्मी जीव बाह्य से भले ही खाली हो, परंतु अंतर में भरे हुए स्वभाव के आश्रय से वह केवलज्ञानी होनेवाला है। और जो जीव संयोग से भरा हुआ परंतु स्वभाव से खाली है–सम्यग्दर्शन से विहीन है, वह विपरीत दृष्टि से संसार में परिभ्रमण करनेवाला है। जिसने आत्मा को स्वभाव से भरा हुआ और संयोग से खाली माना, वह उसके फल में संयोग रहित ऐसे सिद्धपद को प्राप्त होगा। संयोग से आत्मा का बड़प्पन नहीं है। श्रीमद् राजचंद्र कहते हैं कि:—

'लक्ष्मी अने अधिकार बधताँ शुं वध्युं ते तो कहो ?
शुं कुटुम्ब के परिवारथी वधवापणुं अे नय ग्रहो ?
वधवापणुं संसारनुं नर देह ने हारी जवो,
अेनो विचार नहीं अहो हो, एक पल तमने हवो।'

अरे, संयोग से आत्मा का बड़प्पन मानना, वह तो स्वभाव को भूलकर यह मूल्यवान मनुष्य भव व्यर्थ में हार जाने जैसा है। इसलिये हे भाई! ऐसा मनुष्य अवतार प्राप्त करके आत्मा की प्रतीति किसप्रकार हो और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर भवभ्रमण किसप्रकार दूर हो, ऐसा प्रयत्न कर।

जगत में असत्य के माननेवाले अधिक हों तो उससे क्या? और सत्य धर्म को समझनेवाले अल्प ही हों तो क्या? इससे कहीं असत्य के मूल्य में वद्धि हो जाये और सत्य का मूल्य घट जाये, ऐसा नहीं होता। चींटियों के समूह अधिक हों और मनुष्य कम हों तो उससे कहीं चींटियों का मूल्य बढ़ नहीं जाता। जगत में सिद्ध हमेशा से अल्प और संसारी अधिक हैं, तो क्या सिद्ध से संसारी मूल्यवान हो गया? जिसप्रकार अफीम का बड़ा ढ़ेर हो तो भी कड़वा है, और मिश्री की छोटी डली हो तो भी मीठी है; उसीप्रकार मिथ्यामार्ग में करोड़ों जीव हों तो भी वह मार्ग जहर के समान ही है और सम्यग् मार्ग में भले ही थोड़े जीव हों, तथापि वह मार्ग अमृत के समान है। जैसे, थाली भले ही सोने की हो, परंतु उसमें विष भरा हो तो वह शोभा नहीं

देती और खानेवाले के प्राणों का घात करती है; उसीप्रकार भले ही पुण्य के आनंददायक संयोगों में पड़ा हो, तथापि जो जीव मिथ्यात्वरूपी विषयुक्त है, वह शोभा नहीं देता, वह संसार में भटककर मर रहा है। और थाली भले ही लोहे की हो परंतु उसमें अमृत भरा हुआ हो तो वह शोभा देती है और खानेवाले को उससे तृप्ति मिलती है; उसीप्रकार भले ही असीम प्रतिकूलता के बीच पड़ा हो, परंतु जो जीव सम्यग्दर्शनरूपी अमृत से भरा है, वह शोभायमान होता है, तथा वह आत्मा के परम सुख का अनुभव करता हुआ अमृत के समान ऐसे सिद्धपद को प्राप्त करता है। बाह्य संयोग तो ज्ञेयमात्र है, उसे अनुकूल-प्रतिकूल मानना वह कल्पना है।

परमात्मप्रकाश, पृष्ठ २०० में कहा है कि:—

'वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन हि संयुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि राजते॥'

सम्यग्दर्शनसहित जीव का नरक में निवास हो तो भी अच्छा है और सम्यक्त्वरहित जीव का निवास देवलोक में हो तो भी वह शोभायमान नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना तो देवलोक के देवता भी दु:खी ही हैं। शास्त्र तो उनको पापजीव कहते हैं।

'सम्यक्त्वरहित जीवा: पुण्यसहिता अपि पापजीवा भण्यन्ते।'

—ऐसा जानकर श्रावक को सर्वप्रथम सम्यक्त्व की आराधना करनी चाहिये। सम्यक्त्व प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

जैन प्रौढ़ शिक्षणवर्ग में प्रश्नोत्तर

प्रश्न—राग की रुचि, राग का राग, अनंतानुबंधी राग-द्वेष क्या है ?

उत्तर—शुभाशुभराग करनेयोग्य है; निमित्त चाहिये; शुभरागरूपी व्यवहार चाहिये ही, शुभराग परमार्थ से भला है-हितकारी है, ये होवे तो आत्मा में भली बुद्धि होगी, कल्याण होगा —ऐसी श्रद्धा मिथ्यामान्यता है अर्थात् ऐसी श्रद्धासहित जीव को चाहे मंदराग (-शुभराग) हो या तीव्र कषायरूप बहुत राग हो-अनंतानुबंधी राग-द्वेष है।

अथवा

१- भूतार्थ ज्ञायक ज्ञातास्वभाव की अरुचि, वह अनंतानुबंधी क्रोध,

२- मैं पर का, देहादिक का कुछ कर सकता हूँ, वह अनंतानुबंधी मान,

३- शुभराग-पुण्य वास्तव में हितकारी है, भला है, ऐसा मानने में पवित्र ज्ञाता स्वभाव के आदर को धोखा है - अर्थात् स्वतत्त्व को अरुचि द्वारा छुपाता है, वह माया,

४- राग और पुण्यास्रव की रुचि, लोकमान्य अनुकूलता की आशा, जगत को राजी करने और जगत से राजी होने की भावना, यह है अनंतानुबंधी लोभ,

क्रोध-मान दो द्वेष में समाविष्ट है, माया-लोभ राग में आते हैं। राग करनेयोग्य है, इसप्रकार राग की रुचि, वही राग का राग करनेरूप, अनंतानुबंधी राग है। (अज्ञानचेतना है)।

आस्रवतत्त्व कैसा है ? शुभाशुभ दोनों आस्रव आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं। शुभाशुभ राग की भावना-आमाप ऐसी आत्म हिंसा है।

मिथ्यात्व रागादि की उत्पत्ति हिंसा है, और सम्यक्त्वादि की उत्पत्तिपूर्वक मिथ्यात्वादि की अनुत्पत्ति अहिंसा है।

जैनदर्शन शिक्षणकक्षा [मध्यम] में प्रश्नोत्तर

तारीख १२-८-६७, सोनगढ़

प्रश्न—सम्यग्दृष्टि के प्रशस्त राग (शुभोपयोग) में मोक्षमार्गरूप धर्म का अंश है, ऐसी मान्यता में कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—आस्रवतत्त्व को संवर-निर्जरा मानने की भूल है।

समयसार गाथा २०१-२०२ में कहा है कि अणुमात्र राग को भला मानता है, वह आत्मा को नहीं जानता और जो आत्मा को नहीं जानता, वह आनात्मा (अर्थात् राग-आस्रवतत्त्व) को भी नहीं जानता।

प्रशस्त राग से पुण्यास्रव भी मानना और संवर-निर्जरा भी मानना, यह तो भ्रम है। (मोक्षमार्गप्रकाशक, संवरतत्त्व की भूल, पृष्ठ २३१)

हेतु ऐसा है कि शुभराग विभाव है, मोहजन्य औदायिकभाव है, उसमें शुद्धत्व नहीं है। शुभराग, शुभभाव; मन्दकषाय, अल्पकषाय, बंधभाव, अशुद्धभाव, ये सब आस्रवतत्त्व ही हैं, बंधहेतु ही हैं, उससे मोक्षमार्ग की शुद्धता-अरागता का सच्चा कारण मानना भ्रम ही है।

प्रश्न—साधक, सम्यग्दृष्टि को एक ही समय में बंध भी होते हैं और संवर-निर्जरा भी है तो वह किस प्रकार ?

उत्तर—वह मिश्ररूप है, उसमें भूमिका के योग्य स्वाश्रय है, वह भाव तो मोक्षमार्ग में स्थितिरूप आंशिक स्वसमय है और वह वीतरागभाव है तथा उस भूमिका के अनुकूल शुभराग भी होते हैं, वह सरागता है, ऐसा मिश्रभाव सम्यग्दृष्टि को ही होता है, उसमें यह वीतरागता है, यह सरागता है—ऐसी पहचान सम्यग्दृष्टि को ही होती है; इसलिये वह अवशेष रागभाव को हेय (त्याज्य) मानता है। किंतु मिथ्यादृष्टि को ऐसी पहिचान नहीं है, इसलिये सरागभाव में संवर के भ्रम से प्रशस्त राग को उपादेय श्रद्धते हैं। *(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २३१)*

प्रश्न—राग को कहीं पर प्रशस्त क्यों कहा ?

उत्तर—इस राग का विषय पंचपरमेष्ठी होने से उसे भी प्रशस्त कहने की रुढ़िरूप व्यवहार है किंतु न तो राग प्रशस्त है और न तो ऐसे शुभराग को उपादेय के अर्थ में प्रशस्त कहा है, अतः वहाँ राग को प्रशस्त मानने का अभिप्राय नहीं है (देखो पंचास्तिकाय, गाथा १३६)

शुभराग भी प्रशस्त नहीं है किंतु उस शुभराग का विषय पंचपरमेष्ठी अर्थात् प्रशस्त देवादि होने से उपचार से 'भला' इसप्रकार का कथन सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा जानना, कारण कि वह राग भी हेय-बुद्धि से है और ऐसा राग छूटने पर वीतरागता होती है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जानते हैं।

सम्यग्दृष्टि के शुभराग को शुद्धि के साथ निमित्त जानकर 'भला' कहना, वह भी उपचार है। वास्तव में कोई भी राग भला है ही नहीं किंतु केवल बंध का ही कारण है, इसलिये हेय है। (तारीख १३-८-६७ सोनगढ़)

श्री कुन्दकुन्द-कहान

दिगम्बर जैन सरस्वती भवन का उद्घाटन

सोनगढ़ तारीख ८-९-९७ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के आद्यप्रमुख, 'आत्मधर्म' के आद्य संपादक, माननीय श्री रामजीभाई जिन्होंने २७ साल तक संस्था की उन्नति में; सर्वज्ञ वीतराग कथित साहित्य प्रचार में महत्वपूर्ण कार्य किया है-कर रहे हैं, उन्हीं के सम्मान निमित्त दो साल पूर्व जो निधि एकत्रित हुई थी, उनमें से ५०००० की लागत का सोनगढ़ में स्वाध्याय मंदिर के पास जैन आगम मंदिर अर्थात् सरस्वती भवन के लिये सुंदर मनोज्ञ हॉल तैयार हुआ है। उसका उद्घाटन इस भाद्रसुदी ४ तारीख ८-९-६७ को हुआ। इस उद्घाटन के लिये दिया गया आमंत्रण का स्वीकार करके दिल्ली से भारत के समस्त दिगम्बर जैन समाज के प्रसिद्ध नेता श्रीमान् सेठ श्री शांतिप्रसादजी साहूजी सोनगढ़ पधारे थे। श्री साहूजी पूज्य स्वामीजी के परिचय में तो अभी चौथीबार आये किंतु सोनगढ़ में तो प्रथम बार ही आये।

भव्य जिनमंदिर, सुंदर समवसरण, उन्नत उज्ज्वल मानस्तंभजी, अध्यात्म की गूंजमय मनोहर प्रवचन मंडप, शीतल छाया प्रसारित धर्म जिज्ञासुओं को आकर्षित कर रहा 'स्वाध्याय मंदिर' 'ब्रह्मचर्याश्रम' आदि को देखकर तथा दिगम्बर जैन शासन के प्रभावक पूज्य श्री

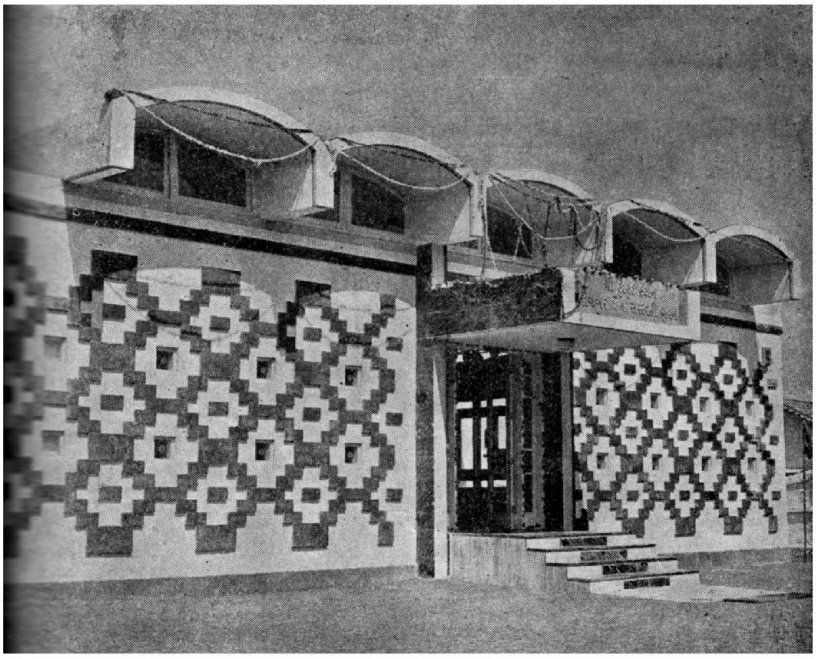

श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन सरस्वती भवन जिसका उद्घाटन श्रीमान् साहू शांतिप्रसादजी जैन के द्वारा भाद्रपद सुदी ४ को हुआ।

माननीय प्रमुखश्री भाषण दे रहे हैं एवं श्रीमान् साहूजी को उद्घाटन करने हेतु निवेदन करते हुये।

सेठ श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन सरस्वती-भवन के उद्घाटन के पूर्व भाषण देते हुये कह रहे हैं कि ''आज मैं अपने को धन्य समझता हूँ कि मुझे सोनगढ़ आ करके पूज्य गुरुदेव का उपदेश सुनने का अवसर मिला।''

पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में श्री साहू शांतिप्रसादजी सरस्वती भवन का उद्घाटन करते हुये (सोनगढ़ : भाद्रपद सुदी ४)

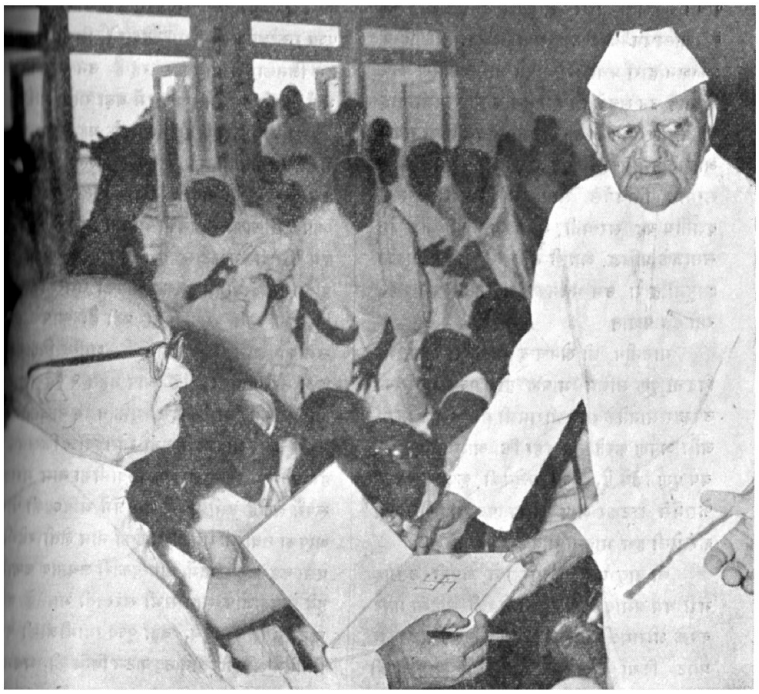

श्री दिगम्बर जैन सरस्वती-भवन के उद्घाटन के बाद पूज्य गुरुदेव ने समयसारजी में स्वस्तिक किया, और श्री रामजीभाई वह ग्रन्थ श्रीमान् साहूजी को भेंट करते हुए।

कानजीस्वामी के दर्शन-प्रवचन से आप प्रसन्न हुए, साथ-साथ दर्शनीय सरस्वती भवन के उद्घाटन के अवसर पर बाहर गाँव से आये हुए मुमुक्षुगण का मेला देखकर आप विशेष आनंदित हुए। (उद्घाटन की तिथि प्रथम भाद्र सुदी १ जाहिर की गई थी, इंदौर से श्री राजकुमारसिंहजी ने सोनगढ़ आने की स्वीकृति दी थी, किंतु तिथि बदलने के कारण दस लक्षण के दिनों में आप इंदौर ही रहते हैं, इसलिये आप न आ सके)।

भाद्र-सुदी ४ पर्यूषण पर्व का प्रारंभ होने से सवेरे जिनमंदिर में दसलक्षण पर्व संबंधी समूह पूजन हुआ, सर्वत्र उमंग भरा उत्सव का मंगल वातावरण था, प्रवचन सभा में ८.०० बजे पूज्य स्वामीजी ने उत्तमक्षमा संबंधी प्रवचन किया, ८.०० बजे सेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू आ पहुँचे, जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके तुरंत प्रवचन में आये, गुरुदेव के दर्शन कर प्रसन्नता प्रगट की, आधा घंटा प्रवचन सुना, उसमें आत्मानुभव होने की पूर्व दशा तथा अनुभव दशा का स्वरूप सुंदर विवेचन द्वारा स्वामीजी ने समझाया।

प्रवचन के पश्चात् उद्घाटन समारोह संबंधी कार्यक्रम शुरु हुआ। प्रथम बाहर गांव से आये हुए शुभ संदेश पढ़े गये, पश्चात् विद्वान भाई श्री हिम्मतलाल जे० शाह ने प्रासंगिक

प्रवचन में प्रथम गुरुदेव का उपकार प्रगट किया और आपके तत्त्वावधान में संस्था ने प्रारंभ से आज तक जो विकास किया, उसका संक्षिप्त इतिहास बतलाकर कहा कि तीस वर्ष पूर्व जब इस स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट की स्थापना हुई, तब किसी को ख्याल भी नहीं था कि भविष्य में इस संस्था का प्रभाव भारतव्यापी बनेगा, अफ्रीका-बर्मादि विदेश तक विस्ताररूप होगा। संस्था के प्रारंभ से आज तक माननीय श्री रामजीभाई ने जो अनेकविध सेवायें दी हैं, धर्म प्रभावना में योगदान दिया है, व्यवस्था क्षेत्र में अपनी पवित्र कुशलता द्वारा संस्था का जो विकास हुआ है, 'आत्मधर्म' के सफल संपादन द्वारा, साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रचार में आपने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, उन सबके लिये माननीय श्री रामजीभाई का आभार मानकर उनका अभिनंदन किया गया। आपकी उन सेवाओं के उपलक्ष्य में श्री रामजीभाई सन्मान निधि में से संस्था की शोभा के अनुरूप, दर्शनीय यह सरस्वमी भवन बना है, आज जैन समाज के प्रसिद्ध अग्रणी नेता श्री शांतिप्रसादजी शाहूजी द्वारा उस भवन का उद्घाटन प्रसंग बन रहा है। पश्चात्

माननीय श्री खेमचंदभाई जे० शेठ ने भी विद्वत्तापूर्ण संक्षिप्त भाषण द्वारा पूज्य गुरुदेव का उपकार मानने के साथ श्रीरामजीभाई के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कहा कि आज आपने ८४ वर्ष पूर्ण किये हैं, पूज्य गुरुदेव की कृपा से ७४ के फेरा में छूटकर आप शाश्वत् पद को शीघ्र प्राप्त करें, ऐसी हम भावना भाते हैं। पश्चात्

श्री बाबूभाई (फतेपुर) ने अपनी उत्साह भरी धर्म प्रभावक शैली से गुरुदेव की महिमा प्रगट करके श्रीरामजीभाई का भी विशेषरूप से उपकार प्रगट किया। अंत में माननीय अध्यक्ष श्री नवनीतभाई सी० जवेरी ने संस्था और समस्त जैन समाज की ओर से श्री रामजीभाई का उपकार मानकर श्रद्धांजलि अर्पण की और श्री शाहूजी को सरस्वती भवन का उद्घाटन करने के लिये विनती की। उद्घाटन के पूर्व भाषण द्वारा श्री शांतिप्रसादजी शाहू ने गुरुदेव के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कहा कि—आज मैं अपने को धन्य समझता हूँ कि मुझे सोनगढ़ में आकर के पूज्य गुरुदेव का उपदेश सुनने का अवसर मिला, भगवान श्री कुन्दकुन्ददेव ने जो ज्ञान दिया था, उस ज्ञान की जानकारी पूज्य गुरुदेव के द्वारा भारतदेश को मिली। आज हम जिनका सम्मान कर रहे हैं, उन श्री रामजीभाई का भी इस ज्ञान प्रचार में बड़ा सहयोग है।

पूज्य गुरुदेव के दर्शन का मुझे यह चौथा अवसर है (डालमियानगर, जयपुर, दिल्ली, सोनगढ़) जब-जब मुझे आपका दर्शन होता है, तब तब आपके सान्निध्य में रहने की भावना

जागती है किंतु हम संसारी झंझटों में हैं। हे गुरुदेव! आज यह पवित्र तीर्थस्थान में आकर आपको नमस्कार करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है; आपके द्वारा सभी को ज्ञानसुख मिलता है, शांति मिलती है। अत: मेरी प्रार्थना है कि आप बहुत-बहुत चिरायु हों, और आपके आशीर्वाद से मुझे व समाज को भी उच्च-उच्च भावना मिलती रहे। आज जिसप्रकार हम लोग भगवान कुन्दकुन्दस्वामी का नाम मंगलरूप में लेते हैं, उसीप्रकार समाज में भविष्य की पीढ़ी आपका तथा श्रीरामजी भाई का नाम लेती रहेगी। ऐसा कहकर सभा में आनंदकारी जयनाद उच्चारते हुए बेण्डबाजों के साथ सभी सरस्वती भवन के उद्घाटन के लिये पहुँचे, वहाँ पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में श्री शाहूजी ने उद्घाटन विधि की, भवन में समयसारजी शास्त्रजी सन्मुख ज्ञान दीपक प्रकाशमान करके शास्त्रजी की पूजा की गई। स्वामीजी ने मंगलीक सुनाया पश्चात् गुरुदेव के सुहस्त से शाहूजी को समयसारजी, प्रवचनसारजी आदि शास्त्र भेंट स्वरूप दिया गया। इसप्रकार बड़ा भारी उत्साह पूर्वक उद्घाटन उत्सव सम्पन्न हुआ।

—जयजिनेन्द्र—

भाद्र० सुदी ३ रात्रि को १ घंटा के लिये प्रसिद्ध नृत्यकार झंडालालजी का जिनेन्द्र भगवान के सामने भक्तिमय नृत्य था।

भाद्र० सुदी ४ रात्रि को दिगम्बर जैन विद्यार्थीगृह के छात्रों द्वारा 'श्रीकंठ राजा का वैराग्य (चलो नंदीश्वर जिनधाम) का धार्मिक संवादमय ड्रामा खेला गया था। (इस जैन विद्यार्थीगृह की व्यवस्था और छात्रों की देखभाल, पढ़ाई और संस्कार अच्छे होने से हरसाल संख्या बढ़ रही है।)

भाद्र० सुदी १० सुगंधदशमी के दिन जिनमंदिर में समूहरूप १० पूजा, दस स्तोत्र सहित धूप क्षेपण हुआ था, यथायोग्य व्रत उपवास हर साल माफिक हुए थे, इस साल बाहर गाँव से आनेवालों की संख्या अधिक थी, सागर निवासी सेठ श्री भगवानदासजी शोभालालजी यहाँ हैं। भाद्र० सुदी १४ अनंत चतुर्दशी के दिन विशेषरूप में धर्म पर्व मनाया गया था, पद्मनंदी पंचविंशति में से आलोचना अधिकार स्वामीजी द्वारा हर साल माधिक इस साल भी पढ़कर विवेचन सहित सुनाया गया था, १० दिन तो शाम को हमेशा स्त्री पुरुषों में अलग अलग जगह सामूहिक 'प्रतिक्रमण पाठ' पढ़ा जाता था। भाद्र सुदी १५ श्री जिनवाणी-शास्त्रजी को बड़े विनय सहित पालकी में विराजमान कर जुलूस निकाला गया था, पश्चात् स्वाध्याय मंदिर में

शास्त्र पूजा का कार्यक्रम था। बदी १ को क्षमावाणी पर्व उपरांत दोपहर को जिनेन्द्र कलशाभिषेक सहित पूजा सामूहिक उत्सव मनाया गया था जो हर साल नियम अनुसार उत्साहसहित पर्व राज सम्पन्न हुए। विशेष समाचार में श्री नवनीतभाई सी. जवेरी प्रमुख श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, आपने पूज्य गुरुदेव का विशेष समागम संगति धर्म लाभ हेतु सुंदर मकान बनवाया है, उनका वास्तु मुहूर्त=उद्घाटन का शुभ प्रसंग आसोज सुदी १० दशहरा का रखा गया है।

पर्यूषण पर्व-संक्षेप समाचार

कोटा—वीर संघ के तत्त्वावधान में बड़े समारोह सहित पर्वराज मनाया गया, दिगंबर जैन बड़ा चैत्यालय में समयसारजी शास्त्र पर श्री युगलकिशोरजी एम०ए० साहित्यरत्न द्वारा प्रवचन रहा; दोपहर २.०० बजे से ३.०० विभिन्न स्तोत्र, पूजाओं के अर्घ, ३ से ४ बजे तक अध्यात्म के गहन विषय पर जिज्ञासुओं के साथ तत्त्वचर्चा एवं शंका समाधान, ४ से ६ बजे तक सुश्री मांगीबाई सा० द्वारा तत्त्वार्थसूत्रजी का प्रवचन; जिसमें बड़ी संख्या में महिलायें सम्मिलित होती थी। सायंकाल सुश्री कनकप्रभा साहित्यरत्न द्वारा १० धर्मों पर प्रवचन। रात्रि में ६ से ८ सार्वजनिक सभा में श्रीयुगलजी द्वारा पंचास्तिकाय शास्त्र गाथा १७२ पर प्रवचन पश्चात् बाबूसाहब ज्ञानचंद्रजी द्वारा श्रावक के सम्यग्दर्शन पूर्वक निश्चय व्यवहारनय से वर्णित षट्कर्मों पर विशद विवेचन बड़े मार्मिक ढंग से होते थे। पर्वों के दिनों में जैन शिक्षण कक्षा में मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७ चलाया गया था, जिसमें करीब २०० पुरुष एवं महिलाओं ने भाग लिया। तारीख १७-९-६७ चतुर्दशी को एक विशालरूप से जिनेन्द्ररथयात्रा का जुलूस निकाला गया था। कलशाभिषेक भी हुये, तारीख २० श्री वीर वनिता संघ द्वारा क्षमावाणी पर्व के उपलक्ष में डा० कमला गंगवाल प्रि० कन्या महाविद्यालय की अध्यक्षता में एक महिला सभा का आयोजन किया गया था। *—लालचन्द्र जैन बी०ए०, मंत्री श्री वीरसंघ, कोटा*

चौरीवाड़—(ईडर) श्री ब्रह्मचारी छोटेलाल गांधी बी०ए० सोनासण निवासी पधारे थे। पर्व में तीन बार शास्त्र प्रवचन, पूजा-भक्ति आदि धार्मिक कार्यक्रम चलता था। जैन उपरांत अजैनों ने बहुत-बहुत उत्साह सहित भाग लिया। जैन शिक्षणवर्ग भी चालू किया गया। धार्मिक

भावना और उत्साह बना रहे, इसलिये श्री ब्रह्मचारी जी की प्रेरणावश समाज ने दिगंबर जैन पाठशाला हमेशा चालू रखने का निर्णय किया गया है। उसके लिये बम्बई निवासी श्री नवनीतभाई तथा स्थानीय सज्जनों की ओर से मदद जाहिर की गई है। *मंत्री दिगम्बर जैन पाठशाला*

पो० चोरीवाड़ (साबरकांठा) उत्तर गुजरात अहमदाबाद

महिदपुर (म०प्र०)—ब्रह्मचारी पंडित श्री झमकलालजी सा० के पधारने से पर्यूषण पर्व में समाज ने उनसे तत्त्वज्ञान का लाभ उठाया और जैनधर्म के शिक्षण की कक्षायें चालू करके जैन सि०प्र०, छहढाला, सूत्रजी पढ़ाया गया। २२ दिन तक अनेक विध धार्मिक कार्यक्रम बड़े उत्साह सहित रहा। *—शांतिलाल सोगानी*

सुसनेर (म०प्र०)—पर्यूषण के बाद ब्रह्मचारी श्री झमकलालजी को महिदपुर से आमंत्रित किया गया। १ दिन प्रवचन धर्मचर्चा का लाभ समाज ने अच्छी तरह लिया।

मल्हारगढ़ (म०प्र०)—श्री जेठमलजी जैन बन्धु (नारायणगढ़ नि०) द्वारा पर्वराज बहुत आनंद सहित संपन्न हुआ। आपके प्रवचन सुमधुर काव्य रस का स्वाद सहित होने से जनता में भारी आकर्षण रहा, आपने हमेशा सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का पवित्र उपकार समझाकर सच्चा जैनधर्म क्या है समझाया।

दिल्ली—श्रीमान पंडित धन्नालालजी सर्राफ (ग्वालियर) के पधारने से इस साल पर्यूषण पर्व में सभी को विशेष आनंद रहा। (१) कार्यक्रम में वैद्यवाड़ा जिनमंदिर में दिन में २ बजे से ४ बजे तक मोक्षशास्त्र पर विस्तृत और आवश्यक प्रश्नों पर बारीकी से विवेचन चलता रहा, सभा में रात्रि को मोक्षमार्गप्रकाशक, पुरुषार्थसिद्धि उपाय, दशलक्षण धर्म पर क्रमशः प्रवचन चलता रहा। जैनधर्म शिक्षण कक्षा भी चालू की गयी थी, मोडल बस्ती में मुमुक्षु मंडल है, वहाँ श्री धर्मरत्न ज्ञानचंद्रजी जो प्रमुख एवं धर्मतत्त्व के ज्ञाता और वक्ता हैं, आपके द्वारा सब धार्मिक कार्यक्रम चलता था, बहुत संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त धर्म जिज्ञासुगण भी प्रेमोल्लास से भाग लेते थे, जो बहुत सराहनीय था, दूर-दूर से बड़ी संख्या में जिज्ञासुओं ने आकर बहुत उत्साह दिखाया, देली में अनेक जगह मुमुक्षु मंडल हैं, एकत्र होते थे।

श्रीमान् पंडित धन्नालालजी के प्रवचन १ दिन पहाड़ी धीरज के जिनमंदिर में, १ दिन मोडल बस्ती में, एक दिन लाल मंदिर में रखा था। श्री पंडित धन्नालालजी द्वारा इस बार धार्मिक प्रवचनों का कार्यक्रम बहुत उत्तम रहा। पूज्य श्री स्वामीजी का तथा स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के प्रचार विभाग का बहुत-बहुत उपकार मानते हैं।

श्रीपाल जैन, सेक्रेटरी, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, देहली

बम्बई—मुंबादेवी रोड दिगम्बर जिनमंदिर-यहाँ आत्मार्थी श्री शशीभाई जैन को भावनगर से दस लक्षण पर्व के लिये खास आमंत्रित किये गये थे। आपके आने से १५ दिन तक विशेष सुंदर, धर्म प्रभावना हुई, आपके द्वारा तत्त्वचर्चा, अध्यात्म प्रवचन, सुनने में सबको बहुत आनंद रहा, मंडल विधान सहित समूह पूजन, प्रवचन, भक्ति आदि सब कार्यक्रम में बड़ा उत्साह रहा, जिन मंदिर में दान में अच्छी रकम प्राप्त हुई, सुगंध-दशमी, अनंत चतुर्दशी रात्रि जागण, क्षमावाणी पर्व रथयात्रा का कार्यक्रम हर साल माफिक रखा गया था।

दादर (बम्बई)—श्री कहान नगर सोसायटी यहाँ बम्बई के अनुरूप भव्य दर्शनीय महा मनोज्ञ श्री समवसरण जी मंदिर तथा जिन मंदिर में पर्वराज मनाया गया, जिसमें श्री प्राणलाल भाई (बोटाद), श्री चिमनभाई (सोनगढ़), श्री शशीभाई (भावनगर) द्वारा प्रवचन रखा गया था, सभी कार्यक्रम उल्लास सहित चलता था।

मलाड (बम्बई)—यहाँ अहमदाबाद निवासी श्री चन्दुभाई पधारे थे, बड़ी संख्या में साधर्मियों द्वारा उत्साह पूर्वक पर्यूषण पर्व का उत्सव मनाया गया, नया दिगंबर जिनमंदिर के निर्माण के लिये समाज ने तत्परता दिखाई है और कुछ चंदा भी एकत्र किया गया है।

घाटकोपर (बम्बई)—यहाँ प्रवचनकार श्री चिमनभाई (सोनगढ़) से पधारे थे, १५ दिन समाज ने लाभ लिया, दसलक्षण पर्व में धर्म जिज्ञासुओं की भारी भीड़ रहती है। इसलिये मंडल का जिनमंदिर बहुत छोटा पड़ता है। अत: घाटकोपर के मध्य में हिन्दू सभा का विशाल हॉल रखा गया था, वहाँ हमेशा समयसारजी शास्त्र तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन क्रमश: दो बार तथा रात्रि को ८ से ९ बजे तक जैन शिक्षण कक्षा का वर्ग रखा गया था।

शिक्षण कक्षाओं में समझाने की शैली बहुत ही सुंदर होने से लाभ लेनेवालों की संख्या बढ़ती रही, नये धर्म जिज्ञासु सच्चे जैनत्व के प्रेमी बने।

तारीख ३-९-६७ को बम्बई से श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमाजी रथयात्रा सहित लाकर हिन्दू सभा के हॉल में लाकर विधि सहित विराजित की थी। रथयात्रा में आस-पास के परा-विभाग में से साधर्मियों की बहुत संख्या ने भाग लिया। तारीख १०-९-६७ 'मुंब्रा' गाँव में भगवान श्री बाहुबली के दर्शनार्थ सर्व मंडल गये, वहाँ प्रवचन के बाद एक घंटा जिनेन्द्र भक्ति का कार्यक्रम रखा गया था। सुगंध दशमी के दिन हरसाल माफिक बम्बई के दिगम्बर जैन मंदिर के दर्शन का कार्यक्रम रखा गया था। तारीख १७ संस्था के अध्यक्ष श्री जयंतीलाल के प्रमुख स्थान में आभार समारंभ हुआ था। *—जयंतीलाल बेचरदास दोशी, प्रमुख,*

—रसिकलाल धोलकिया एवं नवनीतभाई दोशी, मंत्री

कानपुर (उ०प्र०)—तारीख १५-९-६७ परम विद्वान पंडित श्री प्रकाशचंदजी 'हितैषी' शास्त्री, संपादक सन्मति संदेश, देहली से आप समस्त दिगम्बर समाज कानपुर के आमंत्रण से यहाँ पधारे थे। पर्व के दिनों में पंडितजी के द्वारा धार्मिक प्रवचन, शंका-समाधान द्वारा सर्व समाज को अत्यधिक रुचि और अपूर्व उत्साह रहा। हमेशा १० से ११ बजे तक दस धर्म पर एवं सूत्रजी पर विवेचन, रात्रि को ८ से ९ मोक्षमार्गप्रकाशक तथा सूत्रजी के गूढ़तम आध्यात्मिक भावों को अनेक रहस्यों को बताया गया जो जनता को बिल्कुल नई वस्तु थी। अनेक विशेष ज्ञानवान शिक्षित बंधु भी दूर-दूर से सुनने को आते थे। निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, पुण्य और धर्म के विषय में स्पष्टीकरण होता रहा। समाज के अग्रणी गण कहते थे कि कानपुर में पहली बार प्रवचन के समय इतनी शांति रही एवं इतनी तत्त्वजिज्ञासा उत्पन्न हुई।

पंडितजी प्रकाशचंदजी के प्रति सारे समाज ने विशेष धर्म स्नेह एवं सन्मान प्रदर्शित किया। प्रवचन सुनने में अपूर्व भीड़ जुड़ती थी। अंत में विशाल समारोहपूर्वक पंडितजी का समाज के द्वारा सन्मान कर अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। *—सी०एल० जैन*

आगरा (उ०प्र०)—हमारी विनती पर आपने पंडित नेमिचंदजी को पर्व पर प्रवचनार्थ भेजा, इसका हम हृदय से आभार मानते हैं। हम लोग सर्वज्ञ वीतराग कथित सही मार्ग से विपरीत ही थे। जन्म-मरणादि भ्रमण को मिटाकर सच्चे सुख में प्रवेश करानेवाला धर्म क्या वस्तु है, वह समझने में हमारी बड़ी भूल थी। श्री पंडित नेमिचंदजी ने बड़ी सरलता से समझाकर हमको जागृत किया। यहाँ अलग-अलग जगह संप्रदाय की शैली से प्रवचन होता है। अत: पंडितजी का प्रवचन एक ही जगह हुआ, लेकिन अन्य जगह के जिज्ञासुओं बहुत बड़ी संख्या में प्रवचन सुनने तथा भक्ति के कार्यक्रम में आते थे। मंदिरजी बहुत बड़ा होने पर भी बहुत अधिक भीड़ रहती थी। सबसे उत्तम बात यह हुई कि अभी तक यहाँ के समाज में फैलाई गई गलतफहमी वश जो सोनगढ़ की तरफ भ्रम था, वह बहुत मिट गया है। पंडितजी की प्रशंसा आगरा नगर में ही नहीं अपितु आसपास के गाँवों में बहुत फैल गई है। कई गाँवों से पंडितजी के प्रवचन हेतु हमारे पास अनेक पत्र आ रहे हैं। अभी २०-२५ दिन तो आगरे में ही अनेक जगह प्रवचन होने का प्रोग्राम बनाया है।

हम सब पूज्य कानजीस्वामी का परम उपकार निरन्तर याद कर रहे हैं। श्री नेमीचंदजी

की पवित्र और आकर्षक वर्णन शैली से जैनधर्म की अपूर्व महिमा सुनकर बहुत से पुरुष जो मंदिरजी में नहीं आते थे, उन्होंने नित्य आने का एवं स्वाध्याय का नियम लिया है, अनेक वकील, डाक्टरों ने भी जैनधर्म के स्वरूप को समझा है, युवक वर्ग को भी आकर्षण हुआ है। इसीलिए पंडितजी को कम से कम एक मास तक ठहराने का विचार संपूर्ण समाज ने किया है। सभी को यह प्रेरणा अच्छी तरह मिली है कि सर्वज्ञ वीतराग कथित सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए सोनगढ़ में जैन शिक्षण कक्षा में जाकर अपूर्व आत्मिक शांति का उपाय समझ सकते हैं। अंत में हम बहुत आभार मानकर पुनः प्रार्थना है कि समय-समय पर आप विद्वान पंडित सज्जनों को भेजकर हमारे भवों के अंत का रास्ता-सुखी होने का रास्ता दिखायेंगे।

विनीत—पद्मचंद जैन सर्राफ

भौगाँव, मैनपुरी (उ०प्र०)—दसलक्षणी पर्व में मैनपुरी समाज के प्रयत्न से आपकी कृपा से आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित श्री रतनचंदजी शास्त्री पधारे, समाज में अपूर्व आनंद की लहर रही। शास्त्र प्रवचन दिन में तीन समय रखा था, श्रोतागण हमेशा ठीक समय पर उपस्थित रहकर बड़ी रुचि से सुनते रहे, सर्वज्ञ कथित तत्त्वार्थ क्रमबद्धपर्याय, भूतार्थ का परिग्रहण का पुरुषार्थ आदि यथार्थ नय विभाग द्वारा समझने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ था। पंडितजी के प्रवचन से प्रभावित होकर एक 'स्वाध्याय मंडल' की स्थापना भी हुई है, हम सोनगढ़ संस्था एवं पूज्य स्वामीजी का अत्यंत आभार मानते हैं। *—सुरेश जैन*

शिरपुर (अंतरीक्षपार्श्वनाथ, जिला आकोला)—तारीख ११-९-६७ यहाँ दसलक्षण पर्व में ब्रह्मचारी पंडित श्री रमेशचंदजी आमंत्रण अनुसार पधारे, समाज ने बड़ी संख्या में बहुत लाभ लिया, कार्यक्रम में ८ से ९ तक टेपरिकार्ड प्रवचन, ९ से १२ तक सामूहिक पूजन, २ से ३ शिक्षण वर्ग, ३ से ४ शंका समाधान, रात्रि को ७ से ८ भजन भक्ति, ९ से १० तत्त्वचर्चा शंका-समाधान आदि कार्यक्रम थे। यहाँ ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर ढसाला निवासी (प्रसिद्ध कार्यकर्ता महावीर ब्रह्मचारी आश्रम कारंजा) इस दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र का जीर्णोद्धार में उत्तम योगदान देनेवाले, प्रतिष्ठा प्राप्त मूक सेवक हैं—वक्ता भी हैं। यहाँ दो जिनमंदिरजी हैं, करीब ७० घर दिगम्बर जैनियों के हैं। (श्वेतांबर जैन के घर यहाँ नहीं हैं) प्रायः समाज के सभी लोग प्रत्येक कार्यक्रम में उपस्थित रहते थे। बाहर गाँव से धर्म जिज्ञासु यहाँ पर्यूषण पर्व मनाने हेतु आये थे। यहाँ वाशिम से भी बहुत लोग आये थे-वाशिम में

करीब २०० जैनियों के मकान हैं। उनका प्रचारकजी रमेशचंद्रजी को आमंत्रण है।

—लीलाधर पूजाजी मुनीम दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शिरपुर, आकोला (महाराष्ट्र)

ढसाला (जिला वासिम)—यहाँ जैनियों के २० घर हैं, एक मंदिर है–यहाँ तीन समय कार्यक्रम था। टेपरील रेकार्डिंग द्वारा प्रवचन, शास्त्र सभा आदि चलती है, यहाँ से बुरहानपुर आदि जाने का कार्यक्रम हैं। *—रमेशचंद्र जैन*

बुलन्दशहर (उ०प्र०)—पर्वराज के दिनों में पंडित गोविंदरामजी को यहाँ पर भेजकर हम सभी पर बहुत भारी उपकार किया है, उनकी समझाने की शैली अच्छी है, अनुभव–वैराग्यवान–संयमी, सरलस्वभावी हैं। इन जैसे विद्वान के द्वारा समाज में जो गलतफहमी चलती है, वह भ्रम दूर होकर सत्य तत्त्व प्रकाश में आ जाये, ऐसी शैली द्वारा समाज शीघ्र ही सत्य को समझ सकता है। यहाँ के समाप ४ घंटे प्रतिदिन आपके प्रवचन बड़े प्रेम सहित १८ दिन तक सुनते रहे। बच्चों को लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका एवं छहढाला का ज्ञान कराकर उन्हें जैनधर्म का सही रास्ता समझाया, हम सब समाज पूज्य कानजीस्वामी का तथा पंडितजी का एवं सोनगढ़ संस्था का परमोपकार मानते हैं। *डा० जिनेश्वरदास जैन, सभापति*

शीतलप्रसादजी जैन मंत्री

श्री दिगम्बर जैन समाज, बुलन्दशहर (उ०प्र०)

खंडवा (म०प्र०)—श्री पंडित देवशीभाई (राजकोट निवासी) भेजकर हम समस्त जैन समाज को उनके विद्वत्तापूर्ण प्रवचन श्रवण करने का उत्तम लाभ मिला, उसके लिये समाज आपका अति आभारी है। श्री देवशीभाई ने दो साल पूर्व अफ्रीका में बारामास तक जैन धर्म का प्रचार कर सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्म की महिमा बढ़ाई थी, इसप्रकार उन्होंने खंडवा शहर में इस पर्व में आकर धर्म प्रभावना बढ़ाई है। जैनतत्त्वज्ञान के गूढ़ रहस्यों को मधुर वाणी द्वारा दृष्टांत सिद्धांत की संगति सहित प्रत्येक शब्दों के भावार्थ समझाये, आप जैनदर्शन के सिद्धान्तों के मर्मज्ञ हैं। उपरांत भाषा में लालित्य, आकर्षण आर उत्तम काव्यकला है। आपकी प्रशस्त भावना, जिनवाणी की अनुपम भक्ति सराहनीय है। पूजा–भक्ति आदि सब विषय में निश्चय–व्यवहारनय द्वारा तत्त्वार्थों का निरूपण समझाकर आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज को आत्मिक शांति का अनुभव हुआ, धर्मलाभ मिला; अत: समाज बहुत ही प्रभावित हुई।

विनीत—दयाचंद पुनासा अध्यक्ष

जगमदरलाल वकील मंत्री, श्री दिगंबर जैन समाज खंडवा (म०प्र०)

भोपाल—इस पर्यूषण पर्व के पुनीत अवसर पर श्री पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य (सागर निवासी) भोपाल समाज के विशेष आग्रह पर यहाँ पधारे, समाज में विशेष धार्मिक उत्साह जागृत हुआ, आपने सूत्रजी के मार्मिक प्रवचन द्वारा वस्तुस्वरूप की स्वतंत्रता, जिनागम के गंभीर रहस्य, सात तत्त्वों का निरूपण करके बताया कि शुभ या अशुभरूप सभी प्रकार का रागभाव एकमात्र बंध का ही कारण है, ज्ञानी को भी शुभभाव मोक्षमार्ग और संवर-निर्जरा है, ऐसा नहीं है। शुभभाव को आश्रय जानकर श्रद्धा में तो उसे हेय ही मानना चाहिए। रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग निरूपण आचार्यों ने निश्चय-व्यवहाररूप किया है। उसमें भूतार्थ स्वभाव के आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल परिणति ही निश्चयमोक्षमार्ग है। और उक्त परिणति के सहचर रहनेवाले एवं पूर्व की भूमिका में होनेवाले शुभराग को एवं प्रवृत्तिरूप क्रिया को निमित्त-नैमित्तिक संबंध अपेक्षा व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। अतः मोक्षमार्ग कहीं दो नहीं हैं।

नववें अध्याय का प्रवचन करते हुए आपने बताया कि कषाय रहित निर्मल परिणति ही संवर-निर्जरा का कारण है। गुप्ति, समिति, धर्मानुप्रेक्षा, परिषहजय को चारित्र एवं चारित्र के कारण तथा बाह्य-अभ्यंतर तप को निर्जरा का कारण कहा है। उसमें भूमिकानुसार निमित्त-नैमित्तिक को बताकर भेदज्ञान करना कि उक्त भावों में से स्वद्रव्य के आवलंब से जितने कषायों के अभाव में होनेवाले शुद्धभाव हैं, वह तो संवर-निर्जरारूप है तथा प्रवृत्तिरूप जो शुभभाव है, वह बंध का ही कारण है।

आपने जैन तत्त्व के मौलिक सिद्धांतों पर सुंदर प्रकाश डाल। निमित्त-उपादान, कार्यकारण भावों की चर्चा में आपने बताया कि प्रत्येक द्रव्य सदा स्वतंत्ररूप से स्वचतुष्टय में ही स्वतत्त्व से ही परिणमन करता है, भिन्न-भिन्न द्रव्यों की पर्यायों में कर्ताकर्म संबंध नहीं, निमित्त तो व्यंजक ही है, वास्तव में कर्ता नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध व्यवहार ही है।

अपवर्त्य, अनपवर्त्य आयु के विषय में अकाल मरण की चर्चा में स्पष्ट बताया कि मरण तो अपने परिणमन अपेक्षा से भी निश्चित है और केवलज्ञान की अपेक्षा से भी अपने निश्चित स्वकाल ही में होता है। किंतु उदीरणा मरण में विशेष निमित्तों के योग से आयु के अवशिष्ट निषेक युगपत् खिरते हैं। अतः उसे उदीरणा या अकाल मरण व्यवहार से कहते हैं। मंदिर में हवन करने के प्रश्न के समाधान में कहा कि धार्मिक अनुष्ठानों के बाद मंदिर में हवन करने का न तो आचार्यों का विधान है और न वह योग्य ही है।

वह तो केवल लौकिक कार्यों के लिए गृहादि में ही किया जाता है। पर्यूषणपर्व के दिनों में टी.टी. नगर में भी पंडितजी का प्रवचन रात्रि को होता था। *—डालचंद सर्राफ, मंत्री श्री दिगंबर जैन समाज, भोपाल तथा सूरजमल जैन*

सायला (राजस्थान)—पूज्य कानजीस्वामी के उपदेश से प्रभावित होकर इस साल वैशाख सुदी १० नवीन दिगंबर जिनमंदिर में दिगंबर आम्नायानुसार प्रतिष्ठाचार्य श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री (बूंदी) द्वारा भगवान श्री ऋषभदेवजी की वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई है। इस साल दसलक्षण पर्व प्रथम बार जिनमंदिर में भारी उत्साह सहित मनाया गया, मंडल विधान सहित सामूहिक पूजन, भक्ति, टेपरील रेकार्डिंग के द्वारा प्रवचन सुनना, सुनाना, तत्त्वचर्चा प्रवचन करना आदि धार्मिक कार्यक्रम चालू रहा है। इसप्रकार परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामीजी का हम सब पर सच्चा उपकार हुआ है।

—तखतराज वनाजी, सायला, (राजस्थान)

जयपुर (राज०)—में आमंत्रण से श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम०ए० इंदौर से पधारे थे। विशेषरूप से धर्म प्रभावना हुई है। पर्व के समाचार में कलकत्ता, इंदौर, उज्जैन, सागर, विदिशा, अशोकनगर, गुना, उदयपुर, अहमदाबाद, हिम्मतनगर, फतेपुर, पालेज, आफ्रीका में नैरोबी, मोसीमोंबासा आदि तथा राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र के कई गाँव से समाचार आ रहे हैं, धन्यवाद।

नया प्रकाशन

छहढाला सुबोध टीका-सचित्र (आवृत्ति)

यह ग्रंथ सर्वज्ञ वीतराग कथित सर्व शास्त्रों के साररूप होने से, पाठ्यपुस्तकरूप में भी अति सुगम और प्रसिद्ध है, संक्षेप में आत्महितरूप और गागर में सागर समान जैन तत्त्वज्ञान भरा है, सब कोई समझ सके, ऐसी स्पष्ट शैली सहित सचित्र ग्रंथ ऐसा सुंदर है कि वर्तमान समाज में सब जगह जिज्ञासुओं को देख-देखकर बांटने योग्य है। पृष्ठ संख्या २१०, लागत मूल्य १-५० होने पर भी प्रचारार्थ १) ही है, कमीशन नहीं है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन, जो सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग (सुख का उपाय) समझने के लिये परमोपकारी हैं, उनका अपूर्व यथार्थ लाभ लेने के लिये निम्नोक्त ग्रंथों का —

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५-०
अष्टपाहुड़ शास्त्र	प्रेस में
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४-०
श्री नियमसार शास्त्र	४-०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३-५०
समयसार प्रवचन, भाग १-२-३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	अप्राप्य
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ-९००	५-०
स्वयंभू स्तोत्र	०-५०
मुक्ति का मार्ग	०-५०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १,२,३ प्र.	०-६०
योगसार-निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०-१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०-३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१-०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०-७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	छपेगा
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) जिसमें पीछे से किसी के द्वारा बढ़ाये कथन शामिल नहीं किये गये हैं, मूल में जो कथन है वही आधुनिक भाषा में	२-०
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	२-७५
जैन बाल पोथी	०-२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	अप्राप्य
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	अप्राप्य
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	अप्राप्य
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा.	प्रेस में
भेदविज्ञानसार	अप्राप्य
अध्यात्मपाठ संग्रह	४-०
वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
स्तोत्रत्रयी	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२-०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३-७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८) ग्रन्थ का मात्र	६-०
अभिनंदन ग्रंथ	७-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)

प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।